आत्मज्ञान की महासाधना

Volume 4

शिव स्वरोदय

-Ma ChidaNanda

Table of Contents

प्रस्तावना 3
संक्षेप में स्वर योग का क्या महत्व हैं ? 5
स्वर विज्ञानं से कैसे बनायें अपने जीवन को सुखद ? क्या बिना औषध के रोगनिवारण संभव हैं ? 14
प्राचीन एवं गुहय स्वरोदय विज्ञान क्या है ?क्या महासाधना स्वरोदय विज्ञान के बिना 22
शिव स्वरोदय(1-100) 32
क्या है प्राचीन ,दुर्लभ एवं गुहय स्वरोदय विज्ञान?(101-200) 44
क्या है प्राचीन ,दुर्लभ एवं गुहय स्वरोदय विज्ञान?(201-300) 55
क्या है प्राचीन ,दुर्लभ एवं गुहय स्वरोदय विज्ञान?(301-395) 65
शिव स्वरोदय के आधार पर स्वरों के साथ उनमें प्रवाहित होने वाले पंच तत्वों का विचार कैसे करें? 75
क्या स्वरोदय विज्ञान से नाड़ी-शुद्धि संभव है?क्या नाड़ी-शुद्धि से साधकों के सभी दोष नष्ट हो जाते हैं ? 85
- शिव संहिता के अनुसार ज्ञानी समस्त दुःखों से मुक्त हो जाता है।क्या ये संभव है ? 95

प्रस्तावना

ॐ गुरवे आदि शंकराचार्य नमः
ॐ गं गणपतये नमः
ॐ सकारात्मक / नकारात्मक ऊर्जा नमः
ॐ कामाख्या देव्यै नमः
॥ऊं ह्रीं दक्षिणामूर्तये नमः ॥

क्या है शिव स्वरोदय?

''शिव स्वरोदय' स्वरोदय विज्ञान पर अत्यन्त प्राचीन ग्रंथ है। इसमें कुल 395 श्लोक हैं। यह ग्रंथ शिव-पार्वती संवाद के रूप में लिखा गया है।

शायद इसलिए कि सम्पूर्ण सृष्टि में समष्टि और व्यष्टि का अनवरत संवाद चलता रहता है और योगी अन्तर्मुखी होकर योग द्वारा इस संवाद को सुनता है, समझता है और आत्मसात करता हैं। इस ग्रंथ के रचयिता साक्षात् देवाधिदेव भगवान शिव को माना जाता है।स्वर विज्ञान की बातों को अपनाते हुए हम अपने जीवन में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त कर सकते हैं। उदाहरण

के लिए शिव स्वरोदय साधना जानने के बाद इन प्रमुख बातों का ध्यान रख हैं...

1-प्रातः उठकर विस्तर पर ही बैठकर आंख बंद किए हुए पता करें कि किस नाक से सांस चल रही है। यदि बायीं नाक से सांस चल रही हो, तो दक्षिण या पश्चिम की ओर मुंह कर लें। यदि दाहिनी नाक से सांस चल रही हो, तो उत्तर या पूर्व की ओर मुंह करके बैठ जाएं। फिर जिस नाक से सांस चल रही है, उस हाथ की हथेली से उस ओर का चेहरा स्पर्श करें।

2- उक्त कार्य करते समय दाहिने स्वर का प्रवाह हो, तो सूर्य का ध्यान करते हुए अनुभव करें कि सूर्य की किरणें आकर आपके हृदय में प्रवेश कर आपके शरीर को शक्ति प्रदान कर रही हैं। यदि बाएं स्वर का प्रवाह हो, तो पूर्णिमा के चन्द्रमा का ध्यान करें और अनुभव करें कि चन्द्रमा की किरणें आपके हृदय में प्रवेश कर रही हैं और अमृत उड़ेल रही हैं।

3- इसके बाद दोनों हथेलियों को आवाहनी मुद्रा में एक साथ मिलाकर आंखें खोलें और जिस नाक से स्वर चल रहा है, उस हाथ की हथेली की तर्जनी उंगली के मूल को ध्यान केंद्रित करें, फिर हाथ में निवास करने वाले देवी-देवताओं का दर्शन करने का प्रयास करें और साथ में निम्नलिखित श्लोक पढ़ते रहें-
कराग्रे वसते लक्ष्मी करमध्ये सरस्वती।
करमूले तु गोविन्द प्रभाते करदर्शनम्।।
अर्थात कर (हाथ) के अग्र भाग में लक्ष्मी निवास करती हैं, हाथ के बीच में मां सरस्वती और हाथ के मूल में स्वयं गोविन्द निवास करते हैं।

4-तत्पश्चात् निम्नलिखित श्लोक का उच्चारण करते हुए मां पृथ्वी का स्मरण करें और साथ में तन्त्र और योग में पृथ्वी के बताए गए स्वरूप का ध्यान करें-
समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डले।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे।।
फिर जो स्वर चल रहा हो, उस हाथ से माता पृथ्वी का स्पर्श करें और वही पैर जमीन पर रखकर विस्तर से नीचे उतरें।

5-तत्व से ब्रह्माण्ड का निर्माण हुआ है, इसी से इसकी पालना होती है और इसी से इसका विनाश होता है। निराकार प्रभु महादेव से आकाश उत्पन्न हुआ, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी उत्पन हुई है, इसी से ब्रह्माण्ड का निर्माण हुआ है और अंत में सब तत्व में विलीन हो जाता है, फिर सूक्ष्म रूप में तत्व ही रमण करता है।

6-भगवान शिव आगे कहते हैं-''इन्ही पंच तत्वों की मनुष्य देह है और देह में सूक्ष्म रूप से ये पंच तत्व ही विद्यमान हैं। स्वर के उदय में ये पंच तत्व ही समाये हैं, स्वर का ज्ञान सारे ज्ञानो में उत्तम है। हे देवी स्वर में सम्पूर्ण वेद और शास्त्र है, स्वर में उत्तम गायन विद्या है स्वर में सम्पूर्ण त्रिलोकी है, स्वर ही आत्म स्वरुप है। ब्रह्माण्ड के खंड तथा पिंड, शरीर आदि स्वर से ही रचे हुए हैं। संसार की सृष्टि करने वाले महेश्वर भी साक्षात् स्वर रूप ही हैं। स्वर और तत्वों को जानने वाला मेरे अनुग्रह का भागी होता है। इससे उत्तम ज्ञान न देखा गया है न सुना गया है।

देवत्व का अवतरण ''का उद्देश्य पूरा हो सके इसके चलते ही प्रस्तुत पुस्तक को संकलित किया गया है यह एक भक्त का रचना संकलन है ,विद्वान का नहीं। इसलिए भगवान शिव और उनकी शक्ति को समर्पित है।अपनी त्रुटियों के लिए आपसे क्षमायाचना करती हूँ...यह एक भक्त चिदानंदा की विनती है।
... शिवोहम...

संक्षेप में स्वर योग का क्या महत्व हैं ?

स्वर योग का महत्व;-

05 FACTS;-

1-भगवान शिव कहते हैं कि हे देवि, स्वरज्ञान से बड़ा कोई भी गुप्त ज्ञान नहीं है।क्योंकि स्वर-ज्ञान के अनुसार कार्य करनेवाले व्यक्ति सभी वांछित फल अनायास ही मिल जाते हैं।स्वर योग शरीर शास्त्र से सम्बन्ध रखता है औ श्वास क्रिया का प्रत्यक्ष सम्बन्ध उदर से ही है, इसलिए प्राणायाम द्वारा उदर संस्थान तक प्राण वायु को ले जाकर नाभि केन्द्र से इस प्रकार घर्षण

किया जाता है कि वहाँ की सुप्त शक्तियों का जागरण हो सके।इस वायु तत्त्व पर यदि अधिकार प्राप्त कर लिया जाए तो अनेक प्रकार से अपना हित सम्पादन किया जा सकता है।विज्ञानमय कोश वायु प्रधान कोश है।

2-स्वर शास्त्र के अनुसार श्वास-प्रश्वास के मार्गों को नाड़ी कहते हैं। शरीर में ऐसी नाड़ियों की संख्या 72000 है। इनको सिर्फ नसें न समझना चाहिए, स्पष्टत: यह प्राण-वायु आवागमन के मार्ग हैं। नाभि में इसी प्रकार की एक नाड़ी कुण्डलिनी के आकार में है, जिसमें से दस नाड़ियाँ निकली हैं और यह शरीर के विभिन्न भागों की ओर चली जाती हैं...

(1) इड़ा, (2) पिङ्गला, (3) सुषुम्ना, (4) गान्धारी, (5) हस्त-जिह्वा, (6) पूषा, (7) यशश्विनी, (8) अलम्बुषा, (9) कुहू तथा (10) शंखिनी नामक

3-इनमें से पहली तीन प्रधान हैं। इड़ा को 'चन्द्र' कहते हैं जो बाएँ नथुने में है। पिंगला को 'सूर्य कहते हैं, यह दाहिने नथुने में है। सुषुम्ना को वायु कहते हैं जो दोनों नथुनों के मध्य में है। जिस प्रकार संसार में सूर्य और चन्द्र नियमित रूप से अपना-अपना काम करते हैं, उसी प्रकार इड़ा, पिंगला भी इस जीवन में अपना-अपना कार्य नियमित रूप से करती हैं।

4-इन तीनों के अतिरिक्त अन्य सात प्रमुख नाड़ियों के स्थान इस प्रकार हैं—(1)गान्धारी बायीं आँख में,

(2) हस्तजिह्वा दाहिनी आँख में,

(3) पूषा दाहिने कान में,

(4)यशश्विनी बाएँ कान में,

(5) अलम्बुषा मुख में,

(6)कुहू लिंग देश में

(7) शंखिनी गुदा (मूलाधार) में।

इस प्रकार शरीर के दस द्वारों में दस नाड़ियाँ हैं।

5-हठयोग में नाभिकन्द अर्थात् कुण्डलिनी स्थान गुदा द्वार से लिंग देश की ओर दो अँगुल हटकर मूलाधार चक्र माना गया है। स्वर योग में वह स्थिति शरीर की नाभि या मध्य केन्द्र गुदा-मूल में नहीं, वरन् उदर की टुण्डी में ही हो सकता है; इसलिए यहाँ 'नाभि देश' का तात्पर्य उदर की टुण्डी मानना ही ठीक है।

चन्द्र स्वर क्या हैं ?-

04 FACTS;-

1-चन्द्र और सूर्य की अदृश्य रश्मियों का प्रभाव स्वरों पर पड़ता है। सब जानते हैं कि चन्द्रमा का गुण शीतल और सूर्य का उष्ण है। शीतलता से स्थिरता, गम्भीरता, विवेक प्रभृति गुण उत्पन्न होते हैं और उष्णता से तेज, शौर्य, चञ्चलता, उत्साह, क्रियाशीलता, बल आदि गुणों का आविर्भाव होता है। मनुष्य को सांसारिक जीवन में शान्तिपूर्ण और अशान्तिपूर्ण दोनों ही

तरह के काम करने पड़ते हैं। किसी भी काम का अन्तिम परिणाम उसके आरम्भ पर निर्भर है। इसलिए विवेकी पुरुष अपने कर्मों को आरम्भ करते समय यह देख लेते हैं कि हमारे शरीर और मन की स्वाभाविक स्थिति इस प्रकार काम करने के अनुकूल है या नहीं।

2-एक विद्यार्थी को रात में उस समय पाठ याद करने के लिए दिया जाए जबकि उसकी स्वाभाविक स्थिति निद्रा चाहती है, तो वह पाठ को

अच्छी तरह याद न कर सकेगा। यदि यही पाठ उसे प्रात:काल की अनुकूल स्थिति में दिया जाए तो आसानी से सफलता मिल जाएगी। ध्यान, भजन,

पूजा, मनन, चिन्तन के लिए एकान्त की आवश्यकता है, किन्तु उत्साह भरने और युद्ध के लिए कोलाहलपूर्ण

वातावरण की, बाजों की घोर ध्वनि की आवश्यकता होती है। ऐसी उचित स्थितियों में किए कार्य अवश्य ही फलीभूत होते हैं।

3-इसी दृष्टिकोण के आधार पर स्वर-योगियों ने आदेश किया है कि विवेकपूर्ण और स्थायी कार्य चन्द्र स्वर में किए जाने चाहिए; जैसे—विवाह, दान, मन्दिर, कुआँ, तालाब बनाना, नवीन वस्त्र धारण करना, घर बनाना, आभूषण बनवाना, शान्ति के काम, पुष्टि के काम, शफाखाना, औषधि देना, रसायन बनाना, मैत्री, व्यापार, बीज बोना, दूर की यात्रा, विद्याभ्यास, योग क्रिया आदि। यह सब कार्य ऐसे हैं जिनमें अधिक गम्भीरता और बुद्धिपूर्वक कार्य करने की आवश्यकता है, इसलिए इनका आरम्भ भी ऐसे ही समय में होना चाहिए, जब शरीर के सूक्ष्म कोश चन्द्रमा की शीतलता को ग्रहण कर रहे हों।

4-इड़ा शीत ऋतु है तो पिंगला ग्रीष्म ऋतु। जिस प्रकार शीत ऋतु के महीनों में शीत की प्रधानता रहती है, उसी प्रकार चन्द्र नाड़ी शीतल होती है और ग्रीष्म ऋतु के महीनों में जिस प्रकार गर्मी की प्रधानता रहती है, उसी प्रकार सूर्य नाड़ी में उष्णता एवं उत्तेजना का प्राधान्य होता है।

सूर्य स्वर क्या हैं ?-

02 FACTS;-

1-उत्तेजना, आवेश एवं जोश के साथ करने पर जो कार्य ठीक होते हैं, उनके लिए सूर्य स्वर उत्तम कहा गया है; जैसे— क्रूर कार्य, भोग, भ्रष्ट कार्य, युद्ध करना, देश का ध्वंस करना, विष खिलाना, मद्य पीना, हत्या करना, खेलना; काठ, पत्थर, पृथ्वी एवं रत्न को तोड़ना; तन्त्रविद्या, जुआ, चोरी, व्यायाम, नदी पार करना आदि। यहाँ उपर्युक्त कठोर कर्मों का समर्थन या निषेध नहीं है। शास्त्रकार ने तो एक वैज्ञानिक की तरह विश्लेषण कर दिया है कि ऐसे कार्य उस वक्त अच्छे होंगे, जब सूर्य की उष्णता के प्रभाव से जीवन तत्त्व उत्तेजित हो रहा हो।

2-शान्तिपूर्ण मस्तिष्क से भली प्रकार ऐसे कार्यों को कोई व्यक्ति कैसे कर सकता? इसका तात्पर्य यह भी नहीं कि सूर्य स्वर में अच्छे कार्य नहीं होते। संघर्ष और युद्ध आदि कार्य देश, समाज अथवा आश्रित की रक्षार्थ भी हो सकते हैं।इसी प्रकार विशेष परिश्रम के कार्यों का सम्पादन भी समाज और परिवार के लिए अनिवार्य होता है। वे भी सूर्य स्वर में उत्तमतायुक्त होते हैं।

सुषुम्ना स्वर क्या हैं ?-

02 FACTS;-

1-कुछ क्षण के लिए जब दोनों नाड़ी इड़ा, पिंगला रुककर, सुषुम्ना चलती है, तब प्राय: शरीर सन्धि अवस्था में होता है। वह सन्ध्याकाल है। दिन के उदय और अस्त को भी सन्ध्याकाल कहते हैं। इस समय जन्म या मरण काल के समान पारलौकिक भावनाएँ मनुष्य में जाग्रत् होती हैं और संसार की ओर से विरक्ति, उदासीनता एवं अरुचि होने लगती है।स्वर की सन्ध्या से भी मनुष्य का चित्त सांसारिक कार्यों से कुछ उदासीन हो जाता है और

अपने वर्तमान अनुचित कार्यों पर पश्चात्ताप स्वरूप खिन्नता प्रकट करता हुआ, कुछ आत्म-चिन्तन की ओर झुकता है। वह क्रिया बहुत ही सूक्ष्म होती है, अल्पकाल के लिए आती है, इसलिए हम अच्छी तरह पहचान भी नहीं पाते।

2- यदि इस समय परमार्थ चिन्तन और ईश्वराराधना का अभ्यास किया जाए, तो नि:सन्देह उसमें बहुत उन्नति हो सकती है; किन्तु सांसारिक कार्यों के लिए यह स्थिति उपयुक्त नहीं है, इसलिए सुषुम्ना स्वर में आरम्भ होने वाले कार्यों का परिणाम अच्छा नहीं होता, वे अक्सर अधूरे या असफल रह जाते हैं। सुषुम्ना की दशा में मानसिक विकार दब जाते हैं और गहरे आत्मिक भाव का थोड़ा बहुत उदय होता है, इसलिए इस समय मंे दिए हुए शाप या वरदान अधिकांश फलीभूत होते हैं, क्योंकि इन भावनाओं के साथ आत्म-तत्त्व का बहुत कुछ सम्मिश्रण होता है।

क्या स्वर बदल सकते है?-

कई बार ऐसे अवसर आते हैं, जब कार्य अत्यन्त ही आवश्यक हो सकता है, किन्तु उस समय स्वर विपरीत चलता है। तब क्या उस कार्य के किए बिना ही बैठा रहना चाहिए? नहीं, ऐसा करने की जरूरत नहीं है। जिस प्रकार जब रात को निद्रा आती है, किन्तु उस समय कुछ कार्य करना आवश्यक होता है, तब चाय आदि किसी उत्तेजक पदार्थ की सहायता से शरीर को चैतन्य करते हैं, उसी प्रकार हम कुछ उपायों द्वारा स्वर को बदल भी सकते हैं। नीचे कुछ ऐसे नियम हैं ...

07 FACTS;-

(1) जो स्वर नहीं चल रहा, उसे अँगूठे से दबाएँ और जिस नथुने से साँस चलती है, उससे हवा खींचें। फिर जिससे साँस खींची है, उसे दबाकर पहले नथुने से-यानी जिस स्वर को चलाना है, उससे श्वास छोड़ें। इस प्रकार कुछ देर तक बार-बार करें, श्वास की चाल बदल जायेगी।

(2) जिस नथुने से श्वास चल रहा हो, उसी करवट से लेट जायें, तो स्वर बदल जायेगा। इस प्रयोग के साथ पहला प्रयोग करने से स्वर और भी शीघ्र बदलता है।

(3) जिस तरफ का स्वर चल रहा हो, उस ओर की काँख (बगल) में कोई सख्त चीज कुछ देर दबाकर रखो तो स्वर बदल जाता है। पहले और दूसरे प्रयोग के साथ यह प्रयोग भी करने से शीघ्रता होती है।

(4) घी खाने से वाम स्वर और शहद खाने से दक्षिण स्वर चलना कहा जाता है।

(5) चलित स्वर में पुरानी स्वच्छ रूई का फाया रखने से स्वर बदलता है।

(6) प्रस्थान करते समय चलित स्वर के शरीर भाग को हाथ से स्पर्श करके उस चलित स्वर वाले कदम को आगे बढ़ाकर (यदि चन्द्र नाड़ी चलती हो तो 4 बार और सूर्य स्वर है तो 5 बार उसी पैर को जमीन पर पटक कर) प्रस्थान करना चाहिए।

(7)यदि किसी क्रोधी पुरुष के पास जाना है तो अचलित स्वर (जो स्वर न चल रहा हो) के पैर को पहले आगे बढ़ाकर प्रस्थान करना चाहिए और अचलित स्वर की ओर उस पुरुष को करके बातचीत करनी चाहिए। इसी रीति से उसकी बढ़ी हुई उष्णता को अपना अचलित स्वर की ओर का शान्त भाग अपनी आकर्षण विद्युत् से खींचकर शान्त बना देगा और मनोरथ में सिद्धि प्राप्त होगी। गुरु, मित्र, अफसर, राजदरबार से जबकि बाम स्वर चलित हो, तब वार्तालाप या कार्यारम्भ करना ठीक है।

क्या स्वर-संयम से दीर्घ जीवन संभव है?

07 FACTS;-

स्वर को ठीक अवस्था में लाने के उपाय;-

1-बहुधा जिस प्रकार बीमारी की दशा में शरीर को रोग-मुक्त करने के लिए चिकित्सा की जाती है, उसी प्रकार स्वर को ठीक अवस्था में लाने के लिए उन उपायों को काम में लाना

चाहिए। प्रत्येक प्राणी का पूर्ण आयु प्राप्त करना,दीर्घ जीवी होना उसकी श्वास क्रिया पर अवलम्बित है। पूर्व कर्मों के अनुसार जीवित रहने के लिए परमात्मा एक नियत संख्या में श्वास प्रदान करता है, वह श्वास समाप्त होने पर प्राणान्त हो जाता है।

2-इस खजाने को जो प्राणी जितनी होशियारी से खर्च करेगा, वह उतने ही अधिक काल तक जीवित रह सकेगा और जो जितना व्यर्थ गँवा देगा, उतनी ही शीघ्र उसकी मृत्यु हो जाएगी। सामान्यत: हर एक मनुष्य दिन-रात में 21600 श्वास लेता है। इससे कम श्वास लेने वाला दीर्घजीवी होता है, क्योंकि अपने धन का जितना कम व्यय होगा, उतने ही अधिक काल तक वह सञ्चित रहेगा। हमारे श्वास की पूँजी की भी यही दशा है। विश्व के समस्त प्राणियों में जो जीव जितना कम श्वास लेता है, वह उतने ही अधिक काल तक जीवित रहता है। नीचे की तालिका से इसका स्पष्टीकरण हो जाता है।

नाम प्राणी> श्वास की गति प्रति मिनट> पूर्ण आयु

2-1-खरगोश>>>३८ बार>>>८ वर्ष

2-2-बन्दर>>>३२ बार>>>१० वर्ष

2-3-कुत्ता>>>२९ बार>>>११ वर्ष

2-4-घोड़ा>>>१९ बार>>>३५ वर्ष

2-5-मनुष्य>>>१३ बार>>>१२० वर्ष

2-6-साँप>>>८ बार>>>१००० वर्ष

2-7-कछुआ>>>५ बार>>>२००० वर्ष

3--मनुष्य की श्वास गति साधारण काम-काज में 12 बार, दौड़-धूप करने में 18 बार और मैथुन करते समय 36 बार प्रति मिनट के हिसाब से चलती है। इसलिए विषयी और लम्पट मनुष्य की आयु घट जाती है और प्राणायाम करने वाले योगाभ्यासी दीर्घकाल तक जीवित रहते हैं। यहाँ यह न सोचना चाहिए कि चुपचाप बैठे रहने से कम साँस चलती है, इसलिए निष्क्रिय बैठे रहने से आयु बढ़ जाएगी; ऐसा नहीं हो सकता, क्योंकि निष्क्रिय बैठे रहने से शरीर के अन्य अंग निर्बल, अशक्त और बीमार हो जायेंगे, तदनुसार उनकी साँस का वेग बहुत ही बढ़ जाएगा। इसलिए शारीरिक अंगों को स्वस्थ रखने के लिए परिश्रम करना आवश्यक है; किन्तु शक्ति के बाहर परिश्रम भी नहीं करना चाहिए।

4-साँस सदा पूरी और गहरी लेनी चाहिए तथा झुककर कभी न बैठना चाहिए। नाभि तक पूरी साँस लेने पर एक प्रकार से कुम्भक हो जाता है और श्वासों की संख्या कम हो जाती है। मेरुदण्ड के भीतर एक प्रकार का तरल जीवन तत्त्व प्रवाहित होता रहता है, जो सुषुम्ना को बलवान् बनाए रखता है, तदनुसार मस्तिष्क की पुष्टि होती रहती है। यदि मेरुदण्ड को झुका हुआ रखा जाए तो उस तरल तत्त्व का प्रवाह रुक जाता है और निर्बल सुषुम्ना मस्तिष्क का पोषण करने से वञ्चित रह जाती है।

5-शीतलता से अग्नि मन्द पड़ जाती है और उष्णता से तीव्र होती है। यह प्रभाव हमारी जठराग्नि पर भी पड़ता है। सूर्य स्वर में पाचन शक्ति की वृद्धि रहती है, अतएव इसी स्वर में भोजन करना उत्तम है। इस नियम को सब लोग जानते हैं कि भोजन के उपरान्त बाएँ करवट से लेटे रहना चाहिए। उद्देश्य यही है कि बाएँ करवट लेटने से दक्षिण स्वर चलता है जिससे पाचन शक्ति प्रदीप्त होती है।साधारणतया सोते समय चित होकर नहीं लेटना चाहिए, इससे सुषुम्ना स्वर चलकर विघ्न पैदा होने की सम्भावना रहती है। ऐसी दशा में अशुभ तथा भयानक स्वप्न दिखाई पड़ते हैं। इसलिए भोजनोपरान्त पहले बाएँ, फिर दाहिने करवट लेटना चाहिए। भोजन के बाद कम से कम 15 मिनट आराम किए बिना यात्रा करना भी उचित नहीं है।

6-इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना की गतिविधि पर ध्यान रखने से वायु-तत्त्व पर अपना अधिकार होता है। वायु के माध्यम से कितनी ही ऐसी बातें जानी जा सकती हैं, जिन्हें साधारण लोग नहीं जानते। मकड़ी को वर्षा से बहुत पहले पता लग जाता है कि मेघ बरसने वाला है, तदनुसार वह अपनी रक्षा का प्रबन्ध पहले से ही कर लेती है। कारण यह है कि वायु के साथ वर्षा का सूक्ष्म संयोग मिला रहता है, उसे मनुष्य समझ नहीं पाता; पर मकड़ी अपनी चेतना से यह अनुभव कर लेती है कि इतने समय बाद इतने वेग से पानी बरसने वाला है।

7-मकड़ी में जैसी सूक्ष्म वायु परीक्षण चेतना होती है, उससे भी अधिक प्रबुद्ध चेतना स्वर-योगी को मिल जाती है। वह वर्षा, गर्मी को ही नहीं वरन् उससे भी सूक्ष्म बातें, भविष्य की सम्भावनाएँ, दुर्घटनाएँ, परिवर्तनशीलताएँ, विलक्षणताएँ अपनी दिव्यदृष्टि से जान लेता है।

स्वर के आधार पर ही मूक प्रश्न, तेजी-मन्दी, खोई वस्तु का पता, शुभ-अशुभ मुहूर्त आदि बातें बताते हैं। असफल होने की आशंका वाले, दुस्साहसपूर्ण कार्य करने वाले लोग भी स्वर का आश्रय लेकर अपना काम करते हैं। चोर, डाकू आदि इस सम्बन्ध में विशेष ध्यान रखते हैं। व्यापार, राजद्वार, चिकित्सा आदि जोखिम और जिम्मेदारी के कामों में भी स्वर विद्या के नियमों का ध्यान रखा जाता है।

क्या वायु साधना - विज्ञानमय कोश की साधना है?-

08 FACTS;-

(1) शान्त वातावरण में मेरुदण्ड सीधा करके बैठ जाइए और नाभि -चक्र में शुभ्र ज्योतिमण्डल का ध्यान कीजिए। उस ज्योति केन्द्र में समुद्र के ज्वार-भाटे की तरह हिलोरें उठती हुई परिलक्षित होंगी।

(2) यदि बायाँ स्वर चल रहा होगा तो उस ज्योति-केन्द्र का वर्ण चन्द्रमा के समान पीला होगा और उसके बाएँ भाग से निकलने वाली इड़ा नाड़ी में होकर श्वास-प्रवाह का आगमन होगा। नाभि से नीचे की ओर मूलाधार चक्र (गुदा और लिंग का मध्यवर्ती भाग) में होती हुई मेरुदण्ड में होकर मस्तिष्क के ऊपर भाग की परिक्रमा करती हुई नासिका के बाएँ नथुने तक इड़ा नाड़ी जाती है। नाभिकेन्द्र के वाम भाग की क्रियाशीलता के कारण यह नाड़ी का काम करती है और बायाँ स्वर चलता है। इस तथ्य को भावना के दिव्य नेत्रों द्वारा भली-भाँति चित्रवत् पर्यवेक्षण कीजिए।

(3) यदि दाहिना स्वर चल रहा होगा तो नाभिकेन्द्र का ज्योति मण्डल सूर्य के समान तनिक लालिमा लिए हुए श्वेत वर्ण का होगा और उसके दाहिने भाग में से निकलने वाली पिंगला नाड़ी में होकर श्वास-प्रश्वास की क्रिया होगी। नाभि के नीचे मूलाधार में होकर मेरुदण्ड तथा मस्तिष्क में होती हुई दाहिने नथुने तक पिंगला नाड़ी गई है। नाभि चक्र के दाहिने भाग में चैतन्यता होती है और दाहिना स्वर चलता है। इस सूक्ष्म क्रिया को ध्यान-शक्ति द्वारा ऐसे मनोयोगपूर्वक निरीक्षण करना चाहिए कि वस्तु-स्थिति ध्यान क्षेत्र में चित्र के समान स्पष्ट रूप से परिलक्षित होने लगे।

(4) जब स्वर सन्धि होती है तो नाभि चक्र स्थिर हो जाता है, उसमें कोई हलचल नहीं होती और न उतनी देर तक वायु का आवागमन होता है। इस सन्धिकाल में तीसरी नाड़ी मेरुदण्ड में अत्यन्त द्रुत वेग से बिजली के समान कौंधती है और साधारणत: एक क्षण के सौवें भाग में यह कौंध जाती है, इसे ही सुषुम्ना कहते हैं।

(5) सुषुम्ना का जो विद्युत् प्रवाह है, वही आत्मा की चञ्चल झाँकी है। आरम्भ में एक झाँकी एक हलके झपट्टे के समान किञ्चित् प्रकाश की मन्द किरण जैसी होती है। साधना से यह चमक अधिक प्रकाशवान् और अधिक देर ठहरने वाली होती है। कुछ दिनों के पश्चात वर्षाकाल में बादलों के मध्य चमकने वाली बिजली के समान उसका प्रकाश और विस्तार होने लगता है। सुषुम्ना ज्योति में किन्हीं रंगों की आभा होना, उसका सीधा, टेढ़ा, तिरछा या वर्तुलाकार होना आत्मिक स्थिति का परिचायक है। तीन गुण, पाँच तत्त्व, संस्कार एवं अन्त:करण की जैसी स्थिति होती है, उसी के अनुरूप सुषुम्ना का रूप ध्यानावस्था में दृष्टिगोचर होता है।

(6) इड़ा-पिंगला की क्रियाएँ जब स्पष्ट दीखने लगें, तब उनका साक्षी रूप से अवलोकन किया कीजिए। नाभिचक्र के जिस भाग में ज्वार-भाटा आ रहा होगा, वही स्वर चल रहा होगा और केन्द्र में इसी आधार पर सूर्य या चन्द्रमा का रंग होगा। यह क्रिया जैसे-जैसे हो रही है, उसको स्वाभाविक रीति से होते हुए देखते रहना चाहिए। एक साँस के भीतर पूरा प्रवेश होने पर जब लौटती है, तो उसे 'आभ्यन्तर सन्धि' और साँस पूरी तरह बाहर निकलकर नई साँस भीतर जाना जब आरम्भ करती है, तब उसे 'बाह्य सन्धि' कहते हैं। इन कुम्भक कालों में सुषुम्ना की द्रुत गतिगामिनी विद्युत् आभा का अत्यन्त चपल प्रकाश विशेष सजगतापूर्वक दिव्य नेत्रों से देखना चाहिए।

(7) जब इड़ा बदलकर पिंगला में या पिंगला बदलकर इड़ा में जाती है, अर्थात् एक स्वर जब दूसरे में परिवर्तित होता है, तो सुषुम्ना की सन्धि वेला आती है। अपने आप स्वर बदलने के अवसर पर स्वाभाविक सुषुम्ना का प्राप्त होना प्राय: कठिन होता है। इसलिए स्वर विद्या के साधक स्वर बदलने के उपायों से वह परिवर्तन करते हैं और तब सुषुम्ना की सन्धि आने पर आत्मज्योति का दर्शन करते हैं। यह ज्योति आरम्भ में चञ्चल और विविध आकृतियों की होती है और अन्त में स्थिर एवं मण्डलाकार हो जाती है। यह स्थिरता ही विज्ञानमय कोश की सफलता है। उसी स्थिति में आत्म-साक्षात्कार होता है।

(8)सुषुम्ना में अवस्थित होना वायु पर अपना अधिकार कर लेना है। इस सफलता के द्वारा लोक-लोकान्तरों तक अपनी पहुँच हो जाती है और विश्व-ब्रह्माण्ड पर अपना प्रभुत्व अनुभव होता है। प्राचीन समय में स्वर-शक्ति द्वारा अणिमा, महिमा, लघिमा आदि सिद्धियाँ प्राप्त होती थीं। आज के युग-प्रवाह में वैसा तो नहीं होता, पर ऐसे अनुभव होते हैं जिनसे मनुष्य शरीर रहते हुए भी मानसिक आवरण में देवतत्त्वों की प्रचुरता हो जाती है। विज्ञानमय कोश के विजयी को भूदेव या दिव्य आत्मा कहते हैं।

स्वर विज्ञान और प्राणों को नियंत्रित करना ;-

03 FACTS;-

1- माँ पार्वती को उत्तर देते हुए भगवान शिव ने कहा- "इस संसार में प्राण ही सबसे बड़ा मित्र और सबसे बड़ा

सखा है। इस जगत में प्राण से बढ़कर कोई बन्धु नहीं है। इस शरीर रूपी नगर में प्राण-वायु एक सैनिक की तरह इसकी रक्षा करता है। श्वास के रूप में शरीर में प्रवेश करते समय इसकी लम्बाई दस अंगुल और बाहर निकलने के समय बारह अंगुल होता है। चलते-फिरते समय प्राण वायु (साँस) की लम्बाई चौबीस अंगुल, दौड़ते समय बयालीस अंगुल, मैथुन करते समय पैंसठ और सोते समय (नींद में) सौ अंगुल होती है। साँस की स्वाभाविक लम्बाई बारह अंगुल होती है, पर भोजन और वमन करते समय इसकी लम्बाई अठारह अंगुल हो जाती है।

2-भगवान शिव बताते हैं कि "यदि प्राण की लम्बाई कम की जाय तो अलौकिक सिद्धियाँ मिलती हैं। यदि प्राण-वायु की लम्बाई एक अंगुल कम कर दी जाय, तो व्यक्ति निष्काम हो जाता है, दो अंगुल कम होने से आनन्द की प्राप्ति होती है और तीन अंगुल होने से कवित्व या लेखन शक्ति मिलती है।साँस की लम्बाई चार अंगुल कम होने से वाक्-सिद्धि, पाँच अंगुल कम होने से दूर-दृष्टि, छः अंगुल कम होने से आकाश में उड़ने की शक्ति और सात अंगुल कम होने से प्रचंड वेग से चलने की गति प्राप्त होती हैं।

3-यदि श्वास की लम्बाई आठ अंगुल कम हो जाय, तो साधक को आठ सिद्धियों की प्राप्ति होती है, नौ अंगुल कम होने पर नौ निधियाँ प्राप्त होती हैं, दस अंगुल कम होने पर अपने शरीर को दस विभिन्न आकारों में बदलने की क्षमता आ जातीी है और ग्यारह अंगुल कम होने पर शरीर छाया की तरह हो जाता है, अर्थात् उस व्यक्ति की छाया नहीं पड़ती है।श्वास की लम्बाई बारह अंगुल कम होने पर साधक अमरत्व प्राप्त कर लेता है, अर्थात् साधना के दौरान ऐसी स्थिति आती है कि श्वास की गति रुक जाने के बाद भी वह जीवित रह सकता है, और जब साधक नख-शिख अपने प्राणों को नियंत्रित कर लेता है, तो वह भूख, प्यास और सांसारिक वासनाओं पर विजय प्राप्त करलेता है।यदि बाहर निकलने वाली साँस की लम्बाई नौ इंच से कम की जाए तो जीवन दीर्घ होता है और यदि इसकी लम्बाईबढ़ती है तो आन्तरिक प्राण दुर्बल होता है जिससे आयु घटती है।

.... SHIVOHAM...

स्वर विज्ञानं से कैसे बनायें अपने जीवन को सुखद ? क्या बिना औषध के रोगनिवारण संभव हैं ?(केवल साधकों के लिए)

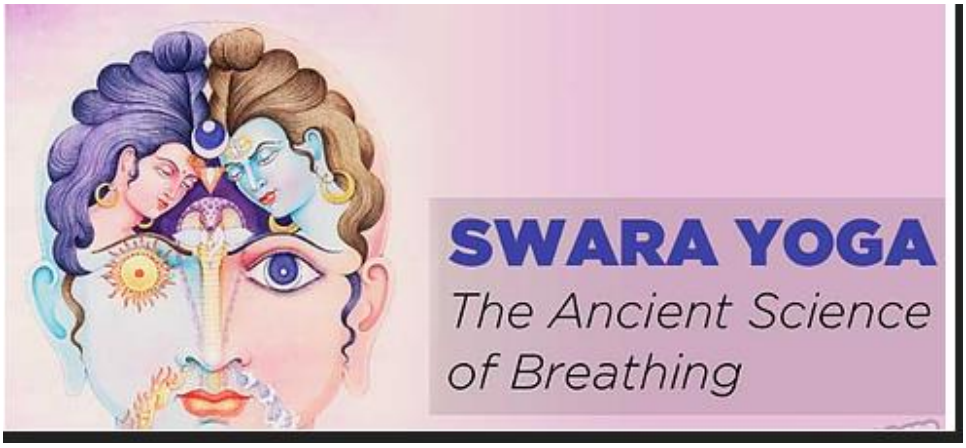

स्वर विज्ञानं से कैसे बनायें अपने जीवन को सुखद

23 FACTS;-

1-सवेरे नींद से जगते ही नासिका से स्वर देखें। जिस तिथि को जो स्वर होना चाहिए, वह हो तो बिस्तर पर उठकर स्वर वाले नासिका छिद्र की तरफ के हाथ की हथेली का चुम्बन ले लें और उसी दिशा में मुंह पर हाथ फिरा लें।

2-यदि बांये स्वर का दिन हो तो बिस्तर से उतरते समय बांया पैर जमीन पर रखकर नीचे उतरें, फिर दायां पैर बांये से मिला लें और इसके बाद दुबारा बांया पैर आगे निकल कर आगे बढ़ लें। यदि दांये स्वर का दिन हो और दांया स्वर ही निकल रहा हो तो बिस्तर पर उठकर दांयी हथेली का चुम्बन ले लें और फिर बिस्तर से जमीन पर पैर रखते समय पर पहले दांया पैर जमीन पर रखें और आगे बढ़ लें।

3-यदि जिस तिथि को स्वर हो, उसके विपरीत नासिका से स्वर निकल रहा हो तो बिस्तर से नीचे नहीं उतरें और जिस तिथि का स्वर होना चाहिए उसके विपरीत करवट लेट लें। इससे जो स्वर चाहिए, वह शुरू हो जाएगा और उसके बाद ही बिस्तर से नीचे उतरें।

4-स्नान, भोजन, शौच आदि के वक्त दाहिना स्वर रखें।

5-पानी, चाय, काफी आदि पेय पदार्थ पीने, पेशाब करने, अच्छे काम करने आदि में बांया स्वर होना चाहिए।

6-जब शरीर अत्यधिक गर्मी महसूस करे तब दाहिनी करवट लेट लें और बांया स्वर शुरू कर दें। इससे तत्काल शरीर ठण्ढक अनुभव करेगा। जब शरीर ज्यादा शीतलता महसूस करे तब बांयी करवट लेट लें, इससे दाहिना स्वर शुरू हो जाएगा और शरीर जल्दी गर्मी महसूस करेगा।

7-जिस किसी व्यक्ति से कोई काम हो, उसे अपने उस तरफ रखें जिस तरफ की नासिका का स्वर निकल रहा हो। इससे काम निकलने में आसानी रहेगी।

8-जब नाक से दोनों स्वर निकलें, तब किसी भी अच्छी बात का चिन्तन न करें अन्यथा वह बिगड़ जाएगी। इस समय यात्रा न करें अन्यथा अनिष्ट होगा। इस समय सिर्फ भगवान का चिन्तन ही करें। इस समय ध्यान करें तो ध्यान जल्दी लगेगा।

9-दक्षिणायन शुरू होने के दिन प्रातःकाल जगते ही यदि चन्द्र स्वर हो तो पूरे छह माह अच्छे गुजरते हैं। इसी प्रकार उत्तरायण शुरू होने के दिन प्रातः जगते ही सूर्य स्वर हो तो पूरे छह माह बढ़िया गुजरते हैं। कहा गया है - कर्के चन्द्रा, मकरे भानु।

10-रोजाना स्नान के बाद जब भी कपड़े पहनें, पहले स्वर देखें और जिस तरफ स्वर चल रहा हो उस तरफ से कपड़े पहनना शुरू करें और साथ में यह मंत्र बोलते जाएं - ॐ जीवं रक्ष। इससे दुर्घटनाओं का खतरा हमेशा के लिए टल जाता है।

11-आप घर में हो या आफिस में, कोई आपसे मिलने आए और आप चाहते हैं कि वह ज्यादा समय आपके पास नहीं बैठा रहे। ऐसे मंे जब भी सामने वाला व्यक्ति आपके कक्ष में प्रवेश करे उसी समय आप अपनी पूरी साँस को बाहर निकाल फेंकियें, इसके बाद वह व्यक्ति जब आपके करीब आकर हाथ मिलाये, तब हाथ मिलाते समय भी यही क्रिया गोपनीय रूप से दोहरा दें। आप देखेंगे कि वह व्यक्ति आपके पास ज्यादा बैठ नहंी पाएगा, कोई न कोई ऐसा कारण उपस्थित हो जाएगा कि उसे लौटना ही पड़ेगा।

12-इसके विपरीत आप किसी को अपने पास ज्यादा देर बिठाना चाहें तो कक्ष प्रवेश तथा हाथ मिलाने की क्रियाओं के वक्त सांस को अन्दर खींच लें। आपकी इच्छा होगी तभी वह व्यक्ति लौट पाएगा।

13-यदि किसी क्रोधी पुरुष के पास जाना है तो जो स्वर नहीं चल रहा है, उस पैर को आगे बढ़ाकर प्रस्थान करना चाहिए तथा अचलित स्वर की ओर उस पुरुष या महिला को लेकर बातचीत करनी चाहिए। ऐसा करने से क्रोधी व्यक्ति के क्रोध को आपका अविचलित स्वर का शांत भाग शांत बना देगा और मनोरथ की सिद्धि होगी।

14-गुरु, मित्र, अधिकारी, राजा, मंत्री आदि से वाम स्वर से ही वार्ता करनी चाहिए।

15-कई बार ऐसे अवसर आते हैं, जब कार्य अत्यंत आवश्यक होता है, लेकिन स्वर विपरीत चल रहा होता है। ऐसे समय में स्वर की प्रतीक्षा करने पर उत्तम अवसर हाथों से निकल सकता है, अत: स्वर परिवर्तन के द्वारा अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिए प्रस्थान करना चाहिए या कार्य प्रारंभ करना चाहिए।

16-यात्रा प्रारम्भ करते समय जिस नाक से साँस चल रही हो वही पैर घर से पहले निकाल कर यात्रा करनी चाहिए। इस प्रकार यात्रा निर्विघ्न सफल होती है।बाएँ स्वर के प्रवाह के समय घर से बाहर जाना शुभ होता है और दाहिने स्वर के प्रवाह काल में अपने घर में या किसी के घर में प्रवेश शुभ दायक होता है।

17- जब अपने गुरु, राजा, मित्र या मंत्री का सम्मान करना हो तो उन्हें अपने सक्रिय स्वर की ही ओर रखना चाहिए।

18 - जय, लाभ और सुख चाहने वाले को अपने शत्रु, चोर, साहूकार, अभियोग लगाने वाले को रोकने हेतु उन्हें अपने निष्क्रिय स्वर की ओर, अर्थात जिस नासिका से स्वर प्रवाहित न हो उस ओर रखना चाहिए।

19- लम्बी यात्रा का प्रारम्भ बाएँ स्वर के प्रवाह काल में करना चाहिए और कम दूरी की यात्रा दाहिने स्वर के प्रवाह काल में करनी चाहिए।

20– यदि किसी के सक्रिय स्वर की ओर कोई दुष्ट या धोखेबाज, शत्रु, ठग, नाराज स्वामी अथवा चोर दिखाई पड़ जाय, तो समझना चाहिये कि उसे खतरा है अर्थात वह सुरक्षित नहीं है।

21– लम्बी यात्रा का आरम्भ करते समय चन्द्र स्वर फलदायक है और किसी कार्यवश किसी के घर में प्रवेश करते समय सूर्य स्वर का सक्रिय होना फलप्रद होता है।

22-जब सूर्योदय के समय सूर्य स्वर और चन्द्रोदय के समय चन्द्र स्वर बहे, तो उस दिन किए गए सभी कार्य सफल होते हैं।

23- लेकिन जब सूर्योदय के समय चन्द्र नाड़ी और चन्द्रोदय के समय सूर्य नाड़ी प्रवाहित हो, तो उस दिन किए सारे कार्य संघर्षपूर्ण और निष्फल होते

हैं।विद्वान लोग कहते हैं कि सूर्य स्वर के प्रवाह काल में किए गए कार्यों में अभूतपूर्व सफलता मिलती है, जबकि चन्द्रस्वर के प्रवाह काल में किए गए कार्यों में ऐसा कुछ नहीं होता।
स्वर विज्ञान का सम्यक ज्ञान आपको सदैव अनुकूल परिणाम प्रदान करवा सकता है।

रोगोत्पत्ति का पूर्ण ज्ञान ;-

03 FACTS;-

1-प्रतिपदा आदि तिथियों को यदि निश्चित नियम के विरुद्ध श्वास चले तो समझना चाहिये कि निस्संदेह कुछ अमङ्गल होगा । जैसे ,शुक्लपक्ष की प्रतिपदा को सबेरे नींद टूटने पर
सूर्योदय के समय पहले यदि दाहिनीं नाक से श्वास चलना आरम्भ हो तो उस दिन से पूर्णिमा तक के बीज गर्मी के कारण शरीर में कोई पीडा होगी ।

2-कृष्णपक्ष की प्रतिपदा तिथि को सूर्योदय के समय पहले बायीं नाक से श्वास चलना आरम्भ हो तो उस दिन से अमावस्या तक के अंदर कफ या सर्दि के कारण कोई पीडा होगी , इसमें संदेह नहीं ।

3-दो पखवाडों तक इसी प्रकार विपरीत ढंग से सूर्योदय के समय निःश्वास चलता रहे तो किसी आत्मीय स्वजन को भारी बीमारी होगी अथवा मृत्यु होगी या और किसी प्रकार की विपत्ति आयेगी । तीन पखवाडों से ऊपर लगातार गडबड होने पर निश्चय ही अपनी मृत्यु हो जायेगी ।

रोगोत्पत्ति का प्रतीकार;-

02 FACTS;-

1-शुक्ल अथवा कृष्णपक्ष की प्रतिपदा के दिन प्रातःकाल यदि इस प्रकार विपरीत ढंग से निःश्वास चलने का पता लग जाय तो उस नासिका को कई दिनों तक बंद रखने से रोग उत्पन्न होने की सम्भावना नहीं रहती । उस नासिका को इस तरह बंद रखना चाहिये , जिसमें उससे निःश्वास न चले । इस प्रकार कुछ दिनों तक दिन -रात निरन्तर (स्नान और भोजन का समय छोडकर) नाक बंद रखने से उक्त तिथियों के भीतर बिलकुल ही कोई रोग नहीं होगा ।

2-यदि असावधानी के कारण निःश्वास में गडबडी हो और कोई रोग उत्पन्न हो जाय तो जब तक रोग दूर न हो जाय , तब तक ऐसा करना चाहिये कि जिससे शुक्लपक्ष में दाहिनी और कृष्णपक्ष में बायीं नासिका से श्वास न चले । ऐसा करने से रोग शीघ्र दूर हो जायगा और यदि कोई भारी रोग होने की सम्भावना होगी तो वह भारी न होकर बहुत सामान्य रुप में होगा और फिर थोडे ही दिनों में दूर हो जायगा । ऐसा करने से न तो रोगजनित कष्ट भोगना पडेगा और न चिकित्सक को धन ही देना पडेगा ।

नासिका बन्द करने का नियम ;-

02 FACTS;-

1-नाक के छेद में घुस सके इतनी -सी पुरानी रुई लेकर उसकी गोल पोटली -सी बना ले और उसे साफ बारीक कपडे से लपेटकर सी ले । फिर इस पोटली को नाक के छिद्र में घुसाकर छिद्र को इस प्रकार बन्द कर दे जिसमें उस नाम से श्वास -प्रश्वास का कार्य बिल्कुल ही न हों । जिन लोगों को कोई शिरो रोग है अथवा जिनका मस्तक दुर्बल हो , उन्हें रुई से नाक बंद न कर , सिर्फ साफ पतले कपडे की पोटली बनाकर उसी से नाक बंद करनी चाहिये ।

2-किसी भी कारण से हो , जितने क्षण या जितने दिन नासिका बंद रखने की आवश्यकता हो उतने क्षण या उतने दिनों तक अधिक अरिश्रम का कार्य , धूम्रपान , जोर से चिल्लाना , दौडना आदि नहीं करना चाहिये । जब जिस -किसी कारण से नाक बन्द रखने की आवश्यकता हो , तभी इन नियमों का पालन अवश्य करना चाहिये । नयी अथवा बिना साफ की हुई मैली रुई नाक में कभी नहीं डालनी चाहिये ।

निःश्वास बदलने की विधि;-

04 FACTS;-

1-कार्यभेद से तथा अन्यान्य अनेक कारणों से एक नासिका से दूसरी नासिका में वायु की गति बदलने की भी आवश्यकता हुआ करती है। कार्य के अनुकूल नासिका से श्वास चलना आरम्भ होने तक , उस कार्य को न करके चुपचाप बैठे रहना किसी के लिये भी सम्भव नहीं। अतएव अपनी इच्छानुसार श्वास की गति बदलने की क्रिया सीख लेना नितान्त आवश्यक है। इसकी क्रिया अत्यन्त सहज है , सामान्य चेष्टा से ही श्वास की गति बदली जा सकती है ।

2-जिस नासिका से श्वास चलता हो , उसके विपरीत दूसरी नासिका को अँगूठे से दबा देना चाहिये और जिससे श्वास चलता हो उसके द्वारा वायु खींचना चाहिये। फिर उसको दबाकर दूसरी नासिका से वायु को निकालना चाहिये। कुछ देर तक इसी तरह एक से श्वास लेकर दूसरी से निकालते रहने से अवश्य श्वास की गति बदल जायगी।

3- जिस नासिका से श्वास चलता हो उसी करवट सोकर यह क्रिया करने से बहुत जल्द श्वास की गति बदल जाती है और दूसरी नासिका में श्वास प्रवाहित होने लगता है। इस क्रिया के बिना भी जिस नाक से श्वास चलता है , केवल उस करवट कुछ समय तक सोये रहने से भी श्वास की गति पलट जाती है।घी खाने से वाम स्वर और शहद खाने से दक्षिण स्वर चलना प्रारंभ हो जाता है।

4-इस प्रकार जो अपनी इच्छानुसार वायु को रोक सकता है और निकाल सकता है वही पवन पर विजय प्राप्त करता है।

बिना औषध के रोगनिवारण;-

11 FACTS;-

1-अनियमित क्रिया के कारण जिस तरह मानव -देह में रोग उत्पन्न होते हैं , उसी तरह औषध के बिना ही भीतरी क्रियाओं के द्वारा नीरोग होने के उपाय भगवान् के बनाये हुए हैं। हमलोग उस भगवत्प्रदत्त सहज कौशल को नहीं जानते , इसी कारण दीर्घकाल तक रोग का दुःख भोगते रहते है। यहाँ रोगों के निदान के लिय स्वरशास्त्रोक्त कुछ यौगिक उपायों का उल्लेख किया गया है। इनके प्रयोग से विशेष लाभ हो सकता है —

1-ज्वर में स्वर परिवर्तन ... ज्वर का आक्रमण होने पर अथवा आक्रमण की आशङ्का होने पर जिस नासिका से श्वास चलता हो , उस नासिका को बंद कर देना चाहिये। जब तक ज्वर न उतरे और शरीर स्वस्थ न हो जाय , तब तक उस नासिका को बंद ही रखना चाहिये। ऐसा करने से दस -पंद्रह दिनों में उतरने वाला ज्वर पाँच ही सात दिनों में अवश्य ही उतर जायगा।

2-ज्वरकाल में मन -ही -मन सदा चाँदी के समान श्वेत वर्ण का ध्यान करने से और भी शीघ्र लाभ होता है।

3- सिरदर्द में स्वर परिवर्तन ..सिरदर्द होने पर दोनों हाथों की केहुने के ऊपर रस्सी से खूब कसकर बाँध देना चाहिये। इससे पाँच -सात मिनट में ही सिरदर्द जाता रहेगा। केहुनी पर इतने जोर से बाँधना चाहिये कि रोगी को हाथ में अत्यन्त दर्द मालूम हो। सिरदर्द अच्छा होते ही बाँहे खोल देनी चाहिये।

4-एक दूसरे प्रकार का सिरदर्द होता है , जिसे साधारणतः 'अधकपाली ' या 'आधासीसी ' कहते हैं। कपाल के

मध्य से बायीं या दाहिने ओर आधे कपाल और मस्तक में अत्यन्त पीडा मालूम होती है। प्रायः यह पीडा सूर्योदय के समय आरम्भ होती है और दिन चढने के साथ -साथ यह भी बढती जाती है। दोपहर के बाद घटनी शुरु होती है और शाम तक प्रायः नहीं ही रहती।

5-इस रोग का आक्रमण होने पर जिस तरफ के कपाल में दर्द हो , ऊपर लिख -अनुसार उसी तरफ की केहुनी के ऊपर जोर से रस्सी बाँध देनी चाहिये। थोडी ही देर में दर्द शान्त हो जायगा और रोग जाता रहेगा। दूसरे दिन यदि फिर दर्द शुरु हो और रोज एक ही नासिका से श्वास चलते समय शुरु होता हो तो सिरदर्द मालूम होते ही उस नाक को बंद कर देना चाहिये और हाथ को भी बाँध रखना चाहिये। 'अद्धकपाली ' सिरदर्द में इस क्रिया से होने वाले आश्चर्यजनक फल को देखकर साधक चकित रह जाते है

6-उदरामय , अजीर्णादि में स्वर परिवर्तन ...भोजन , जलपान आदि जब जो कुछ खाना हो वह दाहिनी नाक से श्वास चलते समय खाना चाहिये। प्रतिदिन इस नियम से आहार करने से वह बहुत आसानी से पच जायगा और कभी अजीर्ण का रोग नहीं होगा। जो लोग इस रोग से कष्ट पा रहे हैं , वे भी यदि इस नियम के अनुसार रोज भोजन करें तो खाए पदार्थ पच जायेगें और धीरे -धीरे उनका रोग दूर हो जायगा। वैसे, स्वरोदय विज्ञान के अनुसार भोजन के लिए पिंगला नाड़ी सर्वोत्तम कहीं गयी है, लेकिन अधिक मसालेदार, वसायुक्त नमकीन या खट्टे भोजन के लिए इडा नाड़ी का प्रवाह काल उत्तम माना गया है, क्योंकि यह शरीर में चयापचय से उत्पन्न विष को उत्सर्जित करने में सक्षम है।

7-भोजन के बाद थोडी देर बायीं करवट सोना चाहिये। जिन्हें समय न हो उन्हें ऐसा उपाय करना चाहिये कि जिससे भोजन के बाद दस -पंद्रह मिनट तक दाहिनी नाक से श्वास चले अर्थात् पूर्वोक्त नियम के अनुसार रुई द्वारा बायीं नाक बंद कर देनी चाहिये। गुरुपाक (भारी) भोजन होने पर भी इस नियम से वह शीघ्र पच जाता है।

8-प्रेमपूर्वक, शांत मन से, पवित्र स्थान पर बैठ कर भोजन करो | जिस समय नासिका का दाहिना स्वर (सूर्य नाड़ी) चालू हो उस समय किया भोजन शीघ्र पच जाता है, क्योंकि उस समय जठराग्नि बड़ी प्रबल होती है | भोजन के समय यदि दाहिना स्वर चालू नहीं हो तो उसको चालू कर दो |

9- यदि पेय पदार्थ लेना हो तो जब चन्द्र (बाँया) स्वर चालू हो तभी लो | यदि सूर्य (दाहिना) स्वर चालू हो और आपने दूध, काफी, चाय, पानी या कोई भी पेय पदार्थ लिया तो ... सूर्य स्वर चल रहा हो तब कोई भी पेय पदार्थ न पियो | उस समय यदि पेय पदार्थ पीना पड़े तो दाहिना नथुना बन्द करके बाँये नथुने से श्वास लेते हुए ही पियो

10-रात्रि को बाँयी करवट लेटकर ही सोना चाहिए | दिन में सोना उचित नहीं किन्तु यदि सोना आवश्यक हो तो दाहिनी करवट ही लेटना चाहिए |

11-रात्रि को संभव हो तो फलाहार लो | अगर भोजन लेना पड़े तो अल्पाहार ही करो | बहुत रात गये भोजन या फलाहार करना हितावह नहीं है | कब्ज की शिकायत हो तो 50 ग्राम लाल फिटकरी तवे पर फुलाकर, कूटकर, कपड़े से छानकर बोतल में भर लो | रात्रि में 15 ग्राम सौंफ एक गिलास पानी में भिगो दो | सुबह उसे उबाल कर छान लो और ड़ेढ़ ग्राम फिटकरी का पाउडर मिलाकर पी लो | इससे कब्ज व बुखार भी दूर होता है | कब्ज तमाम बिमारियों की जड़ है | इसे दूर करना आवश्यक है |

साधना और अश्विनी मुद्रा ;-

1-श्वास सामान्य चलना और गुदा द्वार को बार-बार संकुचित करके बंद करना व फिर छोड़ देना. या श्वास भीतर भरकर रोक लेना और गुदा द्वार को बंद कर लेना, जितनी देर सांस भीतर रुक सके रोकना और उतनी देर तक गुदा द्वार बंद रखना और फिर धीरे-धीरे सांस छोड़ते हुए गुदा द्वार खोल देना इसे अश्विनी मुद्रा कहते हैं.|

2-कई साधक इसे अनजाने में करते रहते हैं और इसको करने से उन्हें दिव्य शक्ति या आनंद का अनुभव भी होता है, परन्तु वे ये नहीं जानते कि वे एक यौगिक क्रिया कर रहे हैं.| अश्विनी मुद्रा का अर्थ है "अश्व यानि घोड़े की तरह करना". घोडा अपने गुदा द्वार को खोलता बंद करता रहता है और इसी से अपने भीतर अन्य सभी प्राणियों से अधिक शक्ति उत्पन्न करता है.| इस अश्विनी मुद्रा को करने से कुण्डलिनी शक्ति शीघ्रातिशीघ्र जाग्रत होती है और ऊपर की और उठकर उच्च केन्द्रों को जाग्रत करती है.|

3-यह मुद्रा समस्त रोगों का नाश करती हैं.| विशेष रूप से शरीर के निचले हिस्सों के सब रोग शांत हो जाते हैं. |स्त्रियों को प्रसव पीड़ा का भी अनुभव नहीं होता. |प्रत्येक नए साधक को या जिनकी साधना रुक गई है उनको यह अश्विनी मुद्रा अवश्य करनी चाहिए. |इसको करने से शरीर में गरमी का अनुभव भी हो सकता है,| उस समय इसे कम करें या धीरे-धीरे करें व साथ में प्राणायाम भी करें.|

4-सर्दी में इसे करने से ठण्ड नहीं लगती.| मन एकाग्र होता है.| साधक को चाहिए कि वह सब अवस्थाओं में इस अश्विनी मुद्रा को अवश्य करता रहे.| जितना अधिक इसका अभ्यास किया जाता है उतनी ही शक्ति बदती जाती है.| इस क्रिया को करने से प्राण का क्षय नहीं होता और इस प्राण उर्जा का उपयोग साधना की उच्च अवस्थाओं की प्राप्ति के लिए या विशेष योग साधनों के लिए किया जा सकता है.|

5-मूल बांध इस अश्विनी मुद्रा से मिलती-जुलती प्रक्रिया है.| इसमें गुदा द्वार को सिकोड़कर बंद करके भीतर - ऊपर की और खींचा जाता है.| यह वीर्य को ऊपर की और भेजता है एवं इसके द्वारा वीर्य की रक्षा होती है.| यह भी कुंडलिनी जागरण व अपानवायु पर विजय का उत्तम साधन है.| इस प्रकार की दोनों क्रियाएं स्वतः हो सकती हैं. इन्हें अवश्य करें. ये साधना में प्रगति प्रदान करती है. |

6-साधना में अथवा ध्यान में अथवा आराधना में कुछ समय मन को एकाग्रकर इन क्रियाओं को करने से शक्ति प्राप्ति और उन्नति की मात्रा बढ़ जाती है |यही सब छोटी-छोटी तकनीकियाँ हैं जो गुरु लोग अपने शिष्यों को क्रमशः बताते हैं और उनकी सफलता को नियंत्रित और तीब्र करते रहते हैं |

7-सामान्य साधक जो बिना गुरु के साधना करते हैं उनमे से अधिकतर को इन छोटी -छोटी तकनीकियों की जानकारी नहीं होती और बहुत परिश्रम पर भी उपलब्धि की मात्रा कम होती है ,कभी कभी तो शून्य होती है ,क्योकि वह तकनीकियों को जानते ही नहीं की ऊर्जा कैसे बढाये ,कैसे उसे उर्ध्वमुखी करें ,कैसे आने वाली ऊर्जा को नियंत्रित करें ,कैसे प्राप्त ऊर्जा को अपने में समाहित करें |साधना -आराधना केवल हाथ जोड़कर प्रार्थना करना ही नहीं है अथवा मंत्र जप नहीं है |यह ऊर्जा को नियंत्रित कर खुद में समायोजित कर उसका उपयोग साधना की उन्नति में करना है |

.....SHIVOHAM...

प्राचीन एवं गुहय स्वरोदय विज्ञान क्या है ?क्या महासाधना स्वरोदय विज्ञान के बिना .. संभव नहीं?क्या है दुर्लभ स्वरोदय शास्त्र?

Days	Tithis	Fort night	Sunrise swara	Sunset swara
1.	Pratipada	Shukla Paksha	Ida (left nostril)	Pingala (right nostril)
2.	Dwitiya	Shukla Paksha	Ida	Pingala
3.	Tritiya	Shukla Paksha	Ida	Pingala
4.	Chaturthi.	Shukla Paksha	Pingala	Ida
5.	Panchami	Shukla Paksha	Pingala	Ida
6.	Shashthi	Shukla Paksha	Pingala	Ida
7.	Saptami.	Shukla Paksha	Ida	Pingala
8.	Ashtami.	Shukla Paksha	Ida	Pingala
9.	Navami.	Shukla Paksha	Ida	Pingala
10.	Dashami.	Shukla Paksha	Pingala	Ida
11.	Ekadasi.	Shukla Paksha	Pingala	Ida
12.	Dwadashi.	Shukla Paksha	Pingala	Ida
13.	Trayodashi.	Shukla Paksha	Ida	Pingala
14.	Chaturdashi.	Shukla Paksha	Ida	Pingala
15.	Purnima	Full moon	Ida	Pingala
16.	Pratipada	Krishna Paksha	Pingala	Ida
17.	Dwitiya	Krishna Paksha	Pingala	Ida
18.	Tritiya	Krishna Paksha	Pingala	Ida
19.	Chaturthi.	Krishna Paksha	Ida	Pingala
20.	Panchami	Krishna Paksha	Ida	Pingala
21.	Shashthi	Krishna Paksha	Ida	Pingala
22.	Saptami.	Krishna Paksha	Pingala	Ida
23.	Ashtami.	Krishna Paksha	Pingala	Ida
24.	Navami.	Krishna Paksha	Pingala	Ida
25.	Dashami.	Krishna Paksha	Ida	Pingala
26.	Ekadasi.	Krishna Paksha	Ida	Pingala
27.	Dwadashi.	Krishna Paksha	Ida	Pingala
28.	Trayodashi.	Krishna Paksha	Pingala	Ida
29.	Chaturdashi.	Krishna Paksha	Pingala	Ida
30.	Amawashya	No Moon	Pingala	Ida

जीवन में स्वर का महत्व ;-

07 FACTS;-

1-विश्वपिता विधाता ने मनुष्य के जन्म के समय में ही देह के साथ एक ऐसा आश्चर्यजनक कौशलपूर्ण अपूर्व उपाय रच दिया है जिसे जान लेने पर सांसारिक, वैषयिक किसी भी कार्य में असफलता का दु:ख नहीं हो सकता। हम इस अपूर्व कौशल को नहीं जानते, इसी कारण हमारा कार्य असफल हो जाता है, आशा भंग हो जाती है, हमें मनसंताप और रोग भोगना पड़ता है। यह विषय जिस शास्त्र में है, उसे स्वरोदय शास्त्र कहते हैं।

2-यह स्वरशास्त्र जैसा दुर्लभ है, स्वरज्ञ गुरु का भी उतना ही अभाव है। स्वरशास्त्र प्रत्यक्ष फल देने वाला है। पद-पद कर इसका प्रत्यक्ष फल देखकर आश्चर्यचकित होना पड़ता है। समग्र स्वरशास्त्र को ठीक-ठीक लिपिबद्ध करना बिलकुल असंभव है। केवल साधकों के काम की कुछ बातें यहां संक्षेप में दी जा रही हैं। स्वरशास्त्र सीखने के लिए श्वास-प्रश्वास की गति के संबंध में सम्यक् ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है।

3-देहरूपी नगर में वायु राजा के समान है। प्राणवायु नि:श्वास और प्रश्वास इन दो नामों से पुकारा जाता है। वायु ग्रहण करने का नाम नि:श्वास और वायु के परित्याग करने का नाम प्रश्वास है। जीव के जन्म से मृत्यु के अंतिम क्षण तक निरंतर श्वास-प्रश्वास की क्रिया होती रहती है और यह नि:श्वास नासिका के दोनों छेदों से एक ही समय एकसाथ समान रूप से नहीं चला करता, कभी बाएं और कभी दाहिने पुट से चलता है। कभी-कभी एकाध घड़ी तक एक ही समय दोनों नाकों से समान भाव से श्वास प्रवाहित होता है।

4-स्वर विज्ञान इस संसार का बहुत ही महत्वपूर्ण और आसान ज्योतिष विज्ञान है जिसके बताये गए संकेत बिलकुल सही माने जाते है और इसकी सहायता से हम अपने जीवन कि दिशा और दशा को बदल सकते है।हमारे शरीर की मानसिक और शारीरिक क्रियाओं, संसार के सभी व्यक्तियों से लेकर दैवीय सम्पर्कों तक को प्रभावित करने की क्षमता रखने वाला स्वर विज्ञान दुनिया के प्रत्येक व्यक्ति के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण साबित हो सकता है।

5-स्वर विज्ञान कि सहायता से कोई भी व्यक्ति अपने जीवन में मनचाही सफलता हासिल कर सकता है। इसकी मदद से व्यक्ति अपने सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति और परिस्तिथियों को अपने पक्ष में कर सकता है।

6-हमारी नाक में दो छिद्र होते हैं। सामान्य अवस्था में इनमें से एक ही छिद्र से हवा का आवागमन होता रहता है। कभी दायें से तो कभी बाएं से इसे ही हम दायाँ और बायाँ स्वर का चलना कहते है। लेकिन जिस समय स्वर बदलता है तो उस समय कुछ पल के लिए दोनों छिद्रों से में हवा निकलती हुई महसूस होती है। इसके अलावा कभी - कभी सुषुम्ना नाड़ी के चलते समय हमारे दोनों नाक के छिद्रों से हवा निकलती है।

7-बांयी तरफ से सांस लेने का मतलब है कि हमारे शरीर की इड़ा नाड़ी में
वायु का प्रवाह है।इसके विपरीत दायीं तरफ से सांस लेने का मतलब है कि हमारे शरीर की पिंगला नाड़ी में वायु का प्रवाह है।लेकिन दोनों के मध्य में
सुषुम्ना नाड़ी का स्वर प्रवाह होता है।

स्वर को पहचानने की सरल विधियाँ;-

03 FACTS;-

==========

(1) शांत भाव से मन एकाग्र करके बैठ जाएँ। अपने दाएँ हाथ को नाक छिद्रों के पास ले जाएँ। तर्जनी अँगुली छिद्रों के नीचे रखकर श्वास बाहर फेंकिए। ऐसा करने पर आपको किसी एक छिद्र से श्वास का अधिक स्पर्श होगा। जिस तरफ के छिद्र से श्वास निकले, बस वही स्वर चल रहा है।

(2) एक छिद्र से अधिक एवं दूसरे छिद्र से कम वेग का श्वास निकलता प्रतीत हो तो यह सुषुम्ना के साथ मुख्य स्वर कहलाएगा।

(3) एक अन्य विधि के अनुसार आईने को नासाछिद्रों के नीचे रखें। जिस तरफ के छिद्र के नीचे काँच पर वाष्प के कण दिखाई दें, वही स्वर चालू समझें।

स्वरशास्त्र (IN NUTSHELL);-

11 FACTS;-

1-जब तक गहन साधना करने की उत्कण्ठा न हो, इस विज्ञान में बताई गयी निम्नलिखित बातों का नियमित पालन किया जा सकता है। इससे आपको दैनिक जीवन के कार्यों में सफलता मिलेगी, आपके आत्मविश्वास का स्तर काफी ऊँचा रहेगा, हीन भावना से मुक्त रहेंगे और आपका स्वास्थ्य ठीक रहेगा।

2-हम अपनी नाक से निकलने वाली साँस के संकेतो को समझ कर अपने जीवन के सभी क्षेत्रों में मनचाहा परिणाम प्राप्त कर सकते हैं। जिस तिथि या वार को जिस छिद्र से साँस लेनी चाहिए, अगर वही होता है तो हमें उस दिन अच्छे परिणाम मिलेंगे । लेकिन अगर उल्टा हुआ तो हमें उस दिन निराशा मिल सकती है। इसलिये किस दिन किस छिद्र से साँस चलनी चाहिए हम इसका ज्ञान हासिल करके जीवन में लगातार उन्नति के पथ पर चल सकते है जो कि सभी के लिए बहुत ही आसान है।

3-बाएं नासापुट के श्वास को इडा में चलना, दाहिनी नासिका के श्वास को पिंगला में चलना और दोनों पुटों से एक समान चलने पर उसे सुषुम्ना में चलना कहते हैं। एक नासापुट को दबाकर दूसरे के द्वारा श्वास को बाहर निकालने पर यह साफ मालूम हो जाता है कि एक नासिका से सरलतापूर्वक श्वास प्रवाह चल रहा है और दूसरा नासापुट मानो बंद है अर्थात उससे दूसरी नासिका की तरह सरलतापूर्वक श्वास बाहर नहीं निकलता। जिस नासिका से सरलतापूर्वक श्वास बाहर निकलता हो, उस समय उसी नासिका का श्वास कहना चाहिए।

4-किस नासिका से श्वास बाहर निकल रहा है, इसको साधक उपर्युक्त प्रकार से समझ सकते हैं। क्रमश: अभ्यास होने पर बहुत आसानी से मालूम होने लगता है कि किस नासिका से नि:श्वास प्रवाहित होता है। प्रतिदिन प्रात:काल सूर्योदय के समय से ढाई-ढाई घड़ी के हिसाब से एक-एक नासिका से श्वास चलता है। इस प्रकार रात-दिन में 12 बार बाईं और 12 बार दाहिनी नासिका से क्रमानुसार श्वास चलता है। किस दिन किस नासिका से पहले श्वासक्रिया होती है, इसका एक निर्दिष्ट नियम है।

5-प्रतिदिन रात-दिन की 60 घड़ियों में ढाई-ढाई घड़ी के हिसाब से एक-एक नासिका से निर्दिष्ट क्रम से श्वास चलने के समय क्रमश: पंचतत्वों का उदय होता है। इस श्वास-प्रश्वास की गति को समझकर कार्य करने पर शरीर स्वस्थ रहता है और मनुष्य दीर्घजीवी होता है, फलस्वरूप सांसारिक, वैषयिक सब कार्यों में सफलता मिलने के कारण सुखपूर्वक संसार यात्रा पूरी होती है।

6-सप्ताह के तीन दिन मंगल, शनि और रवि गर्म मने जाते है क्योंकि इनका संबंध सूर्य स्वर से है जबकि शेष चार दिनों का संबंध चन्द्र स्वर से माना जाता है।

7-हमारे दांये छिद्र से निकलने वाली सांस पिंगला स्वर को सूर्य स्वर कहा जाता है और जैसा कि नाम ही है यह गरम होती है।और बांयी ओर से
निकलने वाली साँस इड़ा स्वर को चन्द्र स्वर कहा जाता है और अपने नाम के अनुरूप यह यह स्वर ठण्डा होता है।

8-वाम नासिका का श्वासफल :

जिस समय इडा नाड़ी से अर्थात बाईं नासिका से श्वास चलता हो, उस समय स्थिर कर्मों को करना चाहिए, जैसे अलंकार धारण, दूर की यात्रा, आश्रम में प्रवेश, राज मंदिर तथा महल बनाना तथा द्रव्यादि को ग्रहण करना। तालाब, कुआं आदि जलाशय तथा देवस्तंभ आदि की प्रतिष्ठा करना। इसी समय यात्रा, दान, विवाह, नया कपड़ा पहनना, शांतिकर्म, पौष्टिक कर्म, दिव्यौषध सेवन, रसायन कार्य, प्रभु दर्शन, मित्रता स्थापन एवं बाहर जाना आदि शुभ कार्य करने चाहिए। बाईं नाक से श्वास चलने के समय शुभ कार्य करने पर उन सब कार्यों में सिद्धि मिलती है, परंतु वायु, अग्नि और आकाश तत्व उदय के समय उक्त कार्य नहीं करने चाहिए।

9-दक्षिण नासिका का श्वासफल :

जिस समय पिंगला नाड़ी अर्थात दाहिनी नाक से श्वास चलता हो, उस समय कठिन कर्म करने चाहिए, जैसे कठिन क्रूर विद्या का अध्ययन और अध्यापन, स्त्री संसर्ग, नौकादि आरोहण, तान्त्रिकमतानुसार वीरमंत्रादिसम्मत उपासना, वैरी को दंड, शास्त्राभ्यास, गमन, पशु विक्रय, ईंट, पत्थर, काठ तथा रत्नादि का घिसना और छीलना, संगीत अभ्यास, यंत्र-तंत्र बनाना, किले और पहाड़ पर चढ़ना, हाथी, घोड़ा तथा रथ आदि की सवारी सीखना, व्यायाम, षट्कर्मसाधन, यक्षिणी, बेताल तथा भूतादिसाधन, औषधसेवन, लिपिलेखन, दान, क्रय-विक्रय, युद्ध, भोग, राजदर्शन, स्नानाहार आदि।

10-सुषुम्ना का श्वासफल :

दोनों नाकों से श्वास चलने के समय किसी प्रकार का शुभ या अशुभ कार्य नहीं करना चाहिए। उस समय कोई भी काम करने से वह निष्फल ही होगा। उस समय योगाभ्यास और ध्यान-धारणादि के द्वारा केवल भगवान को स्मरण करना उचित है। सुषुम्ना नाड़ी से श्वास चलने के समय किसी को भी शाप या वर प्रदान करने पर वह सफल होता है।

11-श्वास-प्रश्वास की गति जानकर, तत्वज्ञान के अनुसार, तिथि-नक्षत्र के अनुसार, ठीक-ठीक नियमपूर्वक सब कर्मों को करने पर आशाभंगजनित मनस्ताप नहीं भोगना पड़ता। बुद्धिमान साधक इस संक्षिप्त अंश को पढ़कर यदि ठीक-ठीक कार्य करेंगे तो निश्चय ही सफल मनोरथ होंगे।

अन्य उपाय

========

03 FACTS;-

1-यदि किसी क्रोधी पुरुष के पास जाना है तो जो स्वर नहीं चल रहा है, उस पैर को आगे बढ़ाकर प्रस्थान करना चाहिए तथा अचलित स्वर की ओर उस पुरुष या महिला को लेकर बातचीत करनी चाहिए। ऐसा करने से क्रोधी व्यक्ति के क्रोध को आपका अविचलित स्वर का शांत भाग शांत बना देगा और मनोरथ की सिद्धि होगी।

2-गुरु, मित्र, अधिकारी, राजा, मंत्री आदि से वाम स्वर से ही वार्ता करनी चाहिए। कई बार ऐसे अवसर भी आते हैं, जब कार्य अत्यंत आवश्यक होता है लेकिन स्वर विपरीत चल रहा होता है।ऐसे समय स्वर बदलने के प्रयास करने चाहिए।

3-स्वर को परिवर्तित कर अपने अनुकूल करने के लिए कुछ उपाय कर लेने चाहिए। जिस नथुने से श्वास नहीं आ रही हो, उससे दूसरे नथुने को दबाकर पहले नथुने से श्वास निकालें। इस तरह कुछ ही देर में स्वर परिवर्तित हो जाएगा। घी खाने से वाम स्वर और शहद खाने से दक्षिण स्वर चलना प्रारंभ हो जाता है।

दिनचर्या के कार्य स्वर के अनुसार;-

07 FACTS;-

1. प्रातः उठकर विस्तर पर ही बैठकर आँख बन्द किए हुए पता करें कि किस नाक से साँस चल रही है। यदि बायीं नाक से साँस चल रही हो, तो दक्षिण या पश्चिम की ओर मुँह कर लें। यदि दाहिनी नाक से साँस चल रही हो, तो उत्तर या पूर्व की ओर मुँह करके बैठ जाएँ। फिर जिस नाक से साँस चल रही है, उस हाथ की हथेली से उस ओर का चेहरा स्पर्श करें।

2. उक्त कार्य करते समय दाहिने स्वर का प्रवाह हो, तो सूर्य का ध्यान करते हुए अनुभव करें कि सूर्य की किरणें आकर आपके हृदय में प्रवेश कर आपके शरीर को शक्ति प्रदान कर रही हैं। यदि बाएँ स्वर का प्रवाह हो, तो पूर्णिमा के चन्द्रमा का ध्यान करें और अनुभव करें कि चन्द्रमा की किरणें आपके हृदय में प्रवेश कर रही हैं और अमृत उड़ेल रही हैं।

3. इसके बाद दोनों हाथेलियों को आवाहनी मुद्रा में एक साथ मिलाकर आँखें खोलें और जिस नाक से स्वर चल रहा है, उस हाथ की हथेली की तर्जनी उँगली के मूल को ध्यान केंद्रित करें, फिर हाथ मे निवास करने वाले देवी-देवताओं का दर्शन करने का प्रयास करें और साथ में निम्नलिखित श्लोक पढ़ते रहें;- कराग्रे वसते लक्ष्मी करमध्ये सरस्वती। करमूले तु गोविन्द प्रभाते करदर्शनम्।। अर्थात कर (हाथ) के अग्र भाग में लक्ष्मी निवास करती हैं, हाथ के बीच में माँ सरस्वती और हाथ के मूल में स्वयं गोविन्द निवास करते हैं।

4. तत्पश्चात् निम्नलिखित श्लोक का उच्चारण करते हुए माँ पृथ्वी का स्मरण करें और साथ में पीले रंग की वर्गाकृति (तन्त्र और योग में पृथ्वी का बताया गया स्वरूप) का ध्यान करें- समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डले। विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे।। फिर जो स्वर चल रहा हो, उस हाथ से माता पृथ्वी का स्पर्श करें और

वही पैर जमीन पर रखकर विस्तर से नीचे उतरें।

5-इसके दूसरे भाग में अपनी दिनचर्या के निम्नलिखित कार्य स्वर के अनुसार करें;-

04 POINTS;-

5-1. शौच सदा दाहिने स्वर के प्रवाहकाल में करें और लघुशंका (मूत्रत्याग) बाएँ स्वर के प्रवाहकाल में।

5-2. भोजन दाहिने स्वर के प्रवाहकाल में करें और भोजन के तुरन्त बाद 10-15 मिनट तक बाईँ करवट लेटें।

5-3. पानी सदा बाएँ स्वर के प्रवाह काल में पिएँ।

5-4- दाहिने स्वर के प्रवाह काल में सोएँ और बाएँ स्वर के प्रवाह काल में उठें।

6-स्वरनिज्ञान की दृष्टि से निम्नलिखत कार्य स्वर के अनुसार करने पर शुभ परिणाम देखने को मिलते हैं;-

06 POINTS;-

6-1. घर से बाहर जाते समय जो स्वर चल रहा हो, उसी पैर से दरवाजे से बाहर पहला कदम रखकर जाएँ।

6-2. दूसरों के घर में प्रवेश के समय दाहिने स्वर का प्रवाह काल उत्तम होता है।

6-3. जन-सभा को सम्बोधित करने या अध्ययन का प्रारम्भ करने के लिए बाएँ स्वर का चुनाव करना चाहिए।

6-4. ध्यान, मांगलिक कार्य आदि का प्रारम्भ, गृहप्रवेश आदि के लिए बायाँ स्वर चुनना चाहिए।

6-5. लम्बी यात्रा बाएँ स्वर के प्रवाहकाल में और छोटी यात्रा दाहिने स्वर के प्रवाहकाल में प्रारम्भ करनी चाहिए।

6-6. दिन में बाएँ स्वर का और रात्रि में दाहिने स्वर का चलना शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक दृष्टि से सबसे अच्छा माना गया है। 7-इस प्रकार धीरे-धीरे एक-एक कर स्वर विज्ञान की बातों को अपनाते हुए हम अपने जीवन में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

प्राचीन एवं गुहय स्वरोदय विज्ञान क्या है ?-

29 FACTS;-

1-मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ ज्ञान-विज्ञान की अनेक शाखाओं, प्रशाखाओं का जन्म हुआ एवं समय के प्रवाह ने उनके परिणामों के आधार पर उनमें अनेक संशोधन एवं परिवर्ध्दन को रूपायित किया। प्रकृति ने इस अखिल ब्रहमाण्ड में अनंत वैज्ञानिक प्रणालियाँ दे रखी हैं। हम एक वैज्ञानिक प्रणाली की खोज करते हैं तो उसकी अन्दर अनेक वैज्ञानिक प्रणालियाँ कार्यरत दिखती हैं। यदि हम सहज चित्त से उन्हें देखते हैं तो वे हमें विस्मय और आनन्द से रोमांचित कर देती हैं और यहीं से योग की भूमि तैयार होती है।

2-शिवसूत्र में भगवान शिव ने इसीलिए विस्मय को योग की भूमिका कहा है - 'विस्मयो योग भूमिका'। यहीं से सूक्ष्म-जगत से जुड़े प्रकृति प्रदत्त विज्ञान से मानव का परिचय होता है। इस क्षेत्र में भी अनन्त वैज्ञानिक प्रणालियाँ हैं और इन पर अनेक प्रामाणिक ग्रंथ उपलब्ध हैं। इन्हीं वैज्ञानिक प्रणालियों में एक स्वरोदय विज्ञान भी

हैं। जिस स्वरोदय विज्ञान की हम यहाँ चर्चा करने जा रहे हैं उसका सम्बन्ध मानव के श्वास-प्रश्वास से है।

3-यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि स्वरोदय विज्ञान और प्राणायाम दोनों एक नहीं हैं। स्वरोदय विज्ञान हमारे शरीर में निहित श्वास-प्रश्वास की व्याख्या करता है, जबकि प्राणायाम श्वास-प्रश्वास का व्यायाम है। हालाँकि दोनों का साधक उन सभी आध्यात्मिक विभूतियों का स्वामी बनता है जिनका उल्लेख ग्रंथों में मिलता है। स्वरोदय विज्ञान एक अत्यन्त प्राचीन एवं गुहय विज्ञान है।

4-तत्व-मीमांसा (Metaphysics) की अनेक शाखाओं-प्रशाखाओं की जितनी खुलकर चर्चा सामान्यतया हुई है, उतनी स्वरोदय की नहीं हुई है। जबकि इसका अभ्यास सामान्य व्यक्ति के लिए काफी लाभदायक है। एक ज्योतिषी के लिए तो इसका ज्ञान अत्यन्त आवश्यक माना गया है। शिव स्वरोदय तो यहाँ तक कहता है कि स्वरोदय विज्ञान से रहित ज्योतिषी की वही दशा होती है जैसे बिना स्वामी के घर, शास्त्र विहीन मुख और सिर के बिना शरीर की।

5-शिव स्वरोदय इस विज्ञान को अत्यन्त गोपनीय बताता है ... (यह स्वरोदय ज्ञान गोपनीय से भी गोपनीय है। इसके ज्ञाता को सभी लाभ मिलते हैं। यह विभिन्न विद्याओं (गुह्य) के मस्तक पर मणि के तुल्य है।) शायद इसीलिए अन्य गुह्य विद्याओं की तरह यह विद्या जन-सामान्य में प्रचलित नहीं हुई, जबकि सामान्य व्यक्तियों के उपयोग में आने वाली अत्यन्त लाभदायक बातों की चर्चा भी इसके अन्तर्गत की गई है।

6-स्वरोदय विज्ञान पर अत्यन्त प्रसिध्द ग्रंथ शिव स्वरोदय है।स्वरोदय विज्ञान के अंतर्गत यहाँ मुख्य रूप से वायु, नाड़ी, तत्व, सूक्ष्म स्वर प्रणाली, इनके परस्पर सम्बन्ध, आवश्यकता के अनुसार स्वर बदलने की विधि तथा विभिन्न कार्यों के लिए स्वरों एवं तत्वों का चुनाव आदि की चर्चा की जाएगी। इसके अतिरिक्त, यहाँ स्वर के माध्यम से अपने स्वास्थ्य का ज्ञान प्राप्त करना एवं स्वर के माध्यम से विभिन्न रोगों के उपचार पर भी प्रकाश डाला जायेगा।

7-जीवनी शक्ति श्वास में अपने को अभिव्यक्त करती है। श्वास के द्वारा ही प्राणशक्ति (जीवनीशक्ति) को प्रभावित किया जा सकता है। इसलिए प्राण शब्द प्राय: श्वास के लिए प्रयुक्त होता है और इसे कभी प्राण वायु भी कहा जाता हैं। हमारे शरीर में 49 वायु की स्थितियाँ बतायी जाती है। इनमें से दस हमारी मानसिक और शारीरिक गतिविधियों को संचालित करती हैं। यौगिक दृष्टि से इनमें पाँच सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं:- प्राण, अपान, समान, व्यान ओर उदान।

8-प्राण वायु... का कार्यक्षेत्र कण्ठ से हृदय-मूल तक माना गया है और इसका निवास हृदय में। इसकी ऊर्जा की गति ऊपर की ओर है। श्वास अन्दर लेना, निगलना, यहाँ तक कि मुँह का खुलना प्राण वायु की शक्ति से ही होता है। 9-इसके अतिरिक्त, ऑंख, कान, नाक और जिह्वा ज्ञानेन्द्रियों द्वारा तन्मात्राओं को ग्रहण करने की प्रक्रिया में भी इसी वायु का हाथ होता हैं। साथ ही यह हमारे शरीर के तापमान को नियंत्रित करती है तथा

मानसिक क्रिया जैसे सूचना लेना, उसे आत्मसात करना और उसमें तारतम्य स्थापित करने का कार्य भी सम्पादित करती है।

10-अपान वायु... का प्रवाह नाभि से नीचे की ओर होता है और वस्ति इसका निवास स्थल है। शरीर की उत्सर्जन क्रियाएँ इसी शक्ति से संचालित होती हैं। इस प्रकार यह वृक्क, ऑतें, वस्ति (गुदा), मूत्राशय एवं जननेन्द्रियों की क्रियाओं को संचालित करती है। अपान वायु में व्यतिक्रम होने से मनुष्य में प्रेरणा का अभाव होता है और वह आलस्य, सुस्ती, भारीपन एवं किंकर्तव्यविमूढ़ता से ग्रस्त हो जाता है।

11-समान वायु... हृदय और नाभि के मध्य सक्रिय रहती है और चयापचय गतिविधियों (Metabolic Activities) का नियमन करती है। कहा जाता है कि मुक्ति का कारक भी यही प्राण है। इसका निवास स्थान नाभि और ऑतें हैं। यह अग्न्याशय, यकृत और अमाशय के कार्य को प्रभावित करती है। इसके अतिरिक्त यह हमारे भोजन का पाचन करती है और पोषक तत्वों को अपशिष्ट पदार्थों से विलग भी करती है।

12-इसकी अनियमितता स े अच्छी भूख लगने और पर्याप्त खाना खाने के बाद भी खाए हुए भोजन का परिपाक समुचित रूप से नहीं होता है और चयापचय गतिविधियों के कारण उत्पन्न विष शरीर में ही घर करने लगता है, जिससे व्यक्ति अम्ल दोष का शिकार हो जाता है। जब यह प्राण संतुलित होता है तो हमारी विवेक बुध्दि सक्रिय रहती है और इसके असंतुलन से मानसिक भ्रांति और संशय उत्पन्न होते हैं।

13-उदान वायु ...प्राण वायु को फेफड़ों से बाहर निकालने का कार्य करती है। इसका निवास स्थान कंठ है और यह कंठ से ऊपर वाले भाग में गतिशील रहती है। यह नियमित होने पर हमारी वाक्क्षमता को सशक्त बनाती है और इसकी अनियमितता स्वर-तंत्र और श्वसन तंत्र की बीमारियों को जन्म देती है। साथ ही इसमें दोष उत्पन्न होने से मिचली भी आती है। सामान्य अवस्था में उदान वायु प्राण वायु को समान वायु से पृथक कर व्यान वायु से संगम कराने का कार्य करती है।

14-व्यान वायु....का जन्म प्राण, अपान, समान और उदान के संयोग से होता है। किन्तु व्यान के अभाव में अन्य चार वायु का अस्तित्व असंभव है, अर्थात् सभी प्राण एक दूसरे पर आश्रित हैं। व्यान वायु हमारे शरीर का संयोजक है। प्राण वायु को पूरे शरीर में व्याप्त करना, पोषक तत्वों का आवश्यकतानुसार वितरण, जीवन ऊर्जा का नियमन, शरीर के विभिन्न अंगों को स्वस्थ रखना, उनके विघटन पर अंकुश लगाना आदि इसके कार्य हैं। यह पूरे शरीर में समान रूप से सक्रिय रहती है। पूरे शरीर में इसका निवास है।

15-ज्ञानेन्द्रियों की ग्राहक क्षमता का नियामक व्यान वायु ही है। सभी ऐच्छिक एवं अनैच्छिक शारीरिक कार्यों का संचालन व्यान वायु ही करती हैं। हमारे शरीर का पर्यावरण के साथ संवाद या पर्यावरण के प्रति हमारी शारीरिक प्रतिक्रियाएं इसी वायु (प्राण) के कारण होती है। इन पाँचों प्राणों के द्वारा पाँच उपप्राणों का सृजन होता है जिन्हें नाग, कूर्म, कृकल (कृकर) देवदत्त और धनंजय कहा जाता है।

16-नाग वायु.. के कारण डकार एवं हिचकी आती हैं और मानसिक स्पष्टता (Clarity of Mind) बनी

रहती है। पलकों का झपकना कूर्म वायु के कारण होता है।

17-कृकल (कृकर).. से भूख और प्यास लगती है तथा छींक आती हैं। देवदत्त.. के कारण जम्हाई आती है और यह निद्रा का कारक है। अन्तिम उपवायु धनंजय.. व्यान वायु की भाँति सर्वव्यापी है और मृत्यु के बाद भी कुछ समय तक शरीर से चिपकी रहती है। इनके अतिरिक्त एक और वायु कही गयी है जिसे महावायु कहते हैं और यह हमारे मस्तिष्क की गतिविधियों को संचालित करती है।

18-उक्त वायु (प्राण) हमारे पूरे शरीर में नाड़ियों से होकर प्रवाहित होती हैं। वैसे शास्त्र हमारे शरीर में 72000 नाड़ियों की स्थिति बताते हैं, जिनमें से 10 मुख्य है:- इडा, पिंगला, सुषुम्ना, गांधारी, हस्तिजिह्वा, पूषा, यशस्विनी, अलम्बुषा, कुहू और शंखिनी। शिव स्वरोदय में श्लोक संख्या 38 से 40 तक इन नाड़ियों का विवरण दिया गया हैं।

19- इन नाड़ियों की स्थिति शरीर के दस द्वारों (Openings)- दो नाक, दो ऑखें, दो कान, मुख, जननेंद्रिय और गुदा उल्लिखित हैं। इन दस नाड़ियों में प्रथम तीन अर्थात् इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना प्रधान हैं। इड़ा और पिंगला नाड़ियाँ क्रमश: चन्द्र नाड़ी और सूर्य नाड़ी के नाम से भी जानी जाती हैं। इड़ा ऋणात्मक और पिंगला धनात्मक नाड़ी कही गयी है।इन्हें ही यिन और यंग के नाम से जाना जाता है।

20-सुषुम्ना उदासीन होती है। हमारी साँसें दोनों नासिकाओं से हमेशा नहीं चलतीं। ये कभी बायीं नासिका से तो कभी दाहिनी नासिका से चलती है। जब साँस बायीं नासिका से चलती है तो उसे इड़ा या चन्द्र स्वर कहते हैं तथा जब दाहिनी नासिका से चलती है तो पिंगला या सूर्य स्वर कहते हैं। जब इनका क्रम एक नासिका से दूसरी नासिका में परिवर्तित होना होता है तो उस समय थोड़ी देर के लिए दोनों नासिकाओं से साँस समान रूप से चलती है और तब उसे सुषुम्ना स्वर कहा जाता है।

21-लगभग एक घंटा साँस बाई नासिका से और फिर एक घंटा दाहिनी नासिका से चलती हैं और इस प्रकार इनका क्रम एक-एक घंटें पर बदलता रहता है। चन्द्र स्वर की प्रकृति शीतल और सूर्य नाड़ी की प्रकृति उष्ण होती है। इनका प्रवाह क्रम चन्द्रमास (Lunar Month) का अनुसरण करता है। अर्थात् शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा, द्वितीया और तृतीया को सूर्योदय के समय बायीं नासिका से साँस चलती है और एक घंटें बाद फिर एक घंटें तक दाहिनी नाक से साँस चलती है। इस प्रकार इनका क्रम घंटें-घंटें पर बदलता रहता है।

22-इसके बाद तीन दिन तक अर्थात् चतुर्थी, पंचमी और षष्ठी को सूर्योदय के समय दाहिनी नासिका से साँस चलती है और फिर घंटें-घंटें पर इनका क्रम बदलता रहता है। इस प्रकार तीन-तीन दिन के बाद सूर्योदय के समय इनका क्रम बदलता रहता है।

23-कृष्ण पक्ष में यह क्रम उलट जाता है, अर्थात् पहले तीन दिन प्रतिपदा, द्वितीया और तृतीया के दिन प्रात: सूर्योदय के समय सूर्य स्वर प्रवाहित होता है। फिर तीन दिनों बाद चन्द्र स्वर तीन दिन तक चलता है और प्रतिदिन घंटें-घंटें पर इनका क्रम बदलता रहता है।

24- स्वामी राम ने अपनी पुस्तक Path of Fire and Light में चन्द्र स्वर और सूर्य स्वर की अवधि एक-एक घंटें के स्थान पर दो-दो घंटें लिखा है। सम्भवत: उन्होंने अपनी उक्त पुस्तक मेंं जिस गुहय तांत्रिक ग्रंथ स्वर विवरण का उल्लेख किया है उसमें इस प्रकार का वर्णन हुआ हो। हालांकि उन्होंने इसके साथ यह भी लिखा है कि स्वरों में उक्त लयबध्दता पूर्णरूपेण तभी आती है जब व्यक्ति प्राणायाम का अभ्यास करता हो। शेष तथ्य लगभग अन्य स्वरोदय ग्रंथों के समान हैं।

25-कहा गया है कि शुक्ल पक्ष में सोमवार, बुधवार, गुरूवार और शुक्रवार को चन्द्रनाड़ी अधिक प्रभावशाली होती है और इसके प्रवाह काल में किया गया कार्य सफल होता है। वैसे ही कृष्ण पक्ष में मंगलवार, शनिवार और रविवार को सूर्य स्वर (नाड़ी) प्रभावशाली होता है और इस अवधि (सूर्य स्वर के प्रवाह काल) में किए गए कार्य प्राय: फलदायी होते हैं।

26-वैसे, शुक्ल पक्ष में चन्द्र स्वर और कृष्ण पक्ष में सूर्य स्वर प्रभावशाली होते हैं। जैसे सूर्य और चन्द्र इस जगत को प्रभावित करते हैं, वैसे ही सूर्य स्वर और चन्द्र स्वर हमारे शरीर को प्रभावित करते हैं। कहा जाता है कि चन्द्र स्वर शरीर को अमृत से सींचता हैं और सूर्य स्वर उसकी नमी को सुखा देता है। जब दोनों स्वर मूलाधार चक्र, जहाँ कुण्डलिनी शक्ति सोती है, पर मिलते हैं तो उसे अमावस्या की संज्ञा दी गई है।

27- प्रकृति द्वारा प्रदत्त शरीर में स्वर पद्धति के अनुसार चौबीस घंटें में इनका बारह राशियों से सम्बन्ध का ज्ञान भी बड़ा रोचक है। चन्द्र स्वर का उदय वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन राशियों में होता है तथा सूर्य स्वर का मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु और कुंभ राशियों में।

28-स्वरोदय विज्ञान के साधक स्वरों की प्राकृतिक पद्धति को बदल देते हैं और सूर्योदय से सूर्यास्त तक चन्द्र स्वर तथा सूर्यास्त से सूर्योदय तक सूर्य स्वर प्रवाहित करते हैं। शास्त्र कहते हैं कि जो ऐसा करने में सक्षम होता है वह योगी है।

29-एक दिन में साँस की छ: ऋतुएं होती हैं। प्रात:काल बसन्त है, मध्याह्न ग्रीष्म, अपराह्न वर्षा, सांयकाल शरद, मध्यरात्रि शीत और रात्रि का आखिरी हिस्सा हेमन्त ऋतु कहलाती है। ये स्वर पाँच महाभूतों को अपने में धारण किए रहते हैं या यों कहा जाए कि पंच महाभूत एक निश्चित क्रम में नियत अवधि तक चन्द्र और सूर्य स्वर में प्रवाहित होते हैं।

प्राचीन एवं गुहय स्वरोदय विज्ञान

CONTD..

.....SHIVOHAM...

शिव स्वरोदय(1-100)

शिव स्वरोदय विज्ञान;-

02 FACTS;-

'शिव स्वरोदय';-

02 FACTS

1-स्वरोदय विज्ञान पर अत्यन्त प्राचीन ग्रंथ है। इसमें कुल 395 श्लोक हैं। यह ग्रंथ शिव-पार्वती संवाद के रूप में लिखा गया है। शायद इसलिए कि सम्पूर्ण सृष्टि में समष्टि और व्यष्टि का अनवरत संवाद चलता रहता है और योगी अन्तर्मुखी होकर योग द्वारा इस संवाद को सुनता है, समझता है और आत्मसात करता हैं। इस ग्रंथ के रचयिता साक्षात् देवाधिदेव भगवान शिव को माना जाता है।

2-यहाँ शिव स्वरोदय के श्लोकों का हिन्दी में अनुवाद दिया जाएगा। आवश्यकतानुसार व्याख्या भी करने का प्रयास किया जाएगा। वैसे यह ग्रंथ बहुत ही सरल संस्कृत भाषा में लिखा गया है। इसमें बतायी गयी साधनाओं का अभ्यास बिना किसी स्वरयोगी के सान्निध्य के करना वर्जित है। केवल निरापद प्रयोगों को ही साधक अपनाएँ।

श्लोक ;-01 TO 100

महेश्वरं शैलजां गणनायकं संसारतारकं गुरुं च नमस्कृत्य परमात्मानं भजे।

1-अर्थ:- महेश्वर भगवान शिव, माँ पार्वती, श्री गणेश और संसार से उद्धार करने वाले गुरु को नमस्कार करके परमात्मा का स्मरण करता हूँ।

अर्थ:2- माँ पार्वती ने भगवान शिव से कहा कि हे देवाधिदेव महादेव, मेरे स्वामी, मुझ पर कृपा करके सभी सिद्धियों को प्रदान करने वाले ज्ञान प्रदान कीजिए।

3 -अर्थ: - हे देव, मुझे यह बताने की कृपा करें कि यह ब्रह्माण्ड कैसे उत्पन्न हुआ, यह कैसे परिवर्तित होता है, अन्यथा यह कैसे विलीन हो जाता है, अर्थात् इसका प्रलय कैसे होता है और ब्रह्माण्ड का मूल कारण क्या है?

4-अर्थ:-भगवान बोले - हे देवि, यह ब्रह्माण्ड तत्व से उत्पन्न होता है, तत्व से परिवर्तित होता है, तत्व में ही विलीन हो जाता है और तत्व से ही ब्रह्माण्ड का निर्णय होता है, अर्थात् तत्व ही ब्रह्माण्ड का मूल कारण है। (इस प्रकार सृष्टि का अनन्त क्रम चलता रहता है)

5 -अर्थ:- हे देव! किस प्रकार (सृष्टि, स्थिति, संहार एवं इनके निर्णय) का मूल कारण तत्व हैं? तत्ववादियों ने उसका क्या स्वरूप बताया है? वह तत्व क्या है?

6-अर्थ:- हे देवि, अजन्मा और निराकार एक मात्र देवता महेश्वर हैं, वे ही इस जगत प्रपंच के मूल कारण हैं। उन्हीं देव से सर्वप्रथम यह आकाश उत्पन्न हुआ और आकाश से वायु उत्पन्न हुआ।

7-अर्थ:- वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी का उद्भव हुआ। इन पाँच प्रकार से ये पंच महाभूत विस्तृत होकर (समष्टि रूप से) सृष्टि करते हैं।

8-अर्थ:- उन्हीं पंच महाभूतों से ब्रह्माण्ड उत्पन्न होता है, उन्हीं के द्वारा परिवर्तित होता है और उन्हीं में विलीन हो जाता है तथा सृष्टि का क्रम सतत् चलता रहता है।

9 - अर्थ:- हे सुन्दरि, इन्हीं पाँच तत्वों से निर्मित हमारे शरीर में ये पाँचों तत्व सूक्ष्म रूप से सक्रिय रहते हैं, जिनसे हमारे शरीर में परिवर्तन होता रहता है। इनका पूर्ण ज्ञान तत्वदर्शी योगियों को ही होता है। यहाँ तत्वायोगी का अर्थ तत्व की साधना कर तत्वों के रहस्यों के प्रकाश का साक्षात् करने वाले योगियों से है।

10- अर्थ:-हे देवि, इसके बाद मैं अब तुम्हें शरीर में स्थित स्वरोदय को व्यक्त करने वाले स्वर के विषय में बताता हूँ। यह स्वर "हंस" रूप है अर्थात् जब साँस बाहर निकलती है तो 'हं' की ध्वनि होती है और जब साँस अन्दर जाती है तो 'सः (सो)' की ध्वनि होती है। इसके संचरण के स्वरूप का ज्ञान हो जाने पर तीनों काल- भूत, भविष्य और वर्तमान हस्तामलवक हो जाते हैं।

11-(हे देवि), स्वरोदय का ज्ञान अत्यन्त गोपनीय ज्ञानों से भी गोपनीय है। यह अपने ज्ञाता का हर प्रकार से हित करता है। यह स्वरोदय ज्ञान सभी ज्ञानों के मस्तक पर मणि के समान है, अर्थात् यह ज्ञानी के लिए अमूल्य रत्न से भी बढ़कर है।

12- सूक्ष्म से भी सूक्ष्म होने पर भी यह ज्ञान सुबोध और सत्य का साधन है अर्थात् सत्य का बोध कराने वाला है। यह नास्तिकों को आश्चर्य में डालने वाला और आस्तिकों के लिए उनकी आस्था का आधार है।

13-(हे देवि) जिस व्यक्ति की प्रकृति शांत हो गयी हो, जिसका चित्त शुद्ध हो, सदाचारी हो, अपने गुरु के प्रति एकनिष्ठ हो, जिसका निश्चय दृढ़ हो, ऐसे पुनीत आचरण वाले व्यक्ति को स्वरोदय ज्ञान की दीक्षा देनी चाहिए या ऐसा व्यक्ति स्वरोदय ज्ञान का अधिकारी होता है।

14- दुष्ट, दुर्जन, क्रोधी, नास्तिक, कामुक, सत्त्वहीन और दुराचारी को स्वरोदय ज्ञान की दीक्षा कभी नहीं देनी चाहिए।

15-हे देवि शरीर में स्थित इस उत्तम ज्ञान को सुनो, जिसे विशेष रुप जान लेने पर (व्यक्ति) सर्वज्ञ हो जाता है।

16-सभी वेदों, शास्त्रों, संगीत आदि उत्तम ज्ञान स्वर में ही सन्निविष्ट है। हमारे अस्तित्व की तीनों अवस्थाएँ- चेतन, अवचेतन और अचेतन स्वर मे ही संगुम्फित हैं। (और क्या कहूँ?) स्वर ही आत्म-स्वरूप है।

17;- स्वरोदय विज्ञान के ज्ञान के अभाव में एक ज्योतिषी वैसे ही है, जैसे बिना स्वामी का घर, शास्त्र-ज्ञान के बिना मुख और बिना शिर के शरीर। अर्थात् एक ज्योतिषि के लिए स्वर-ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है।

18- नाड़ियों, प्राणों तथा तत्त्वों के भेद का यथावत ज्ञान और सुषुम्ना के साथ उनके संयोग को जो व्यक्ति विवेक पूर्वक जानता है, वह मुक्ति पाने का अधिकारी होता है।

19-हे सुमुखि, स्वर का ज्ञान होने पर शुभ स्वर के प्रभाव से विद्वान दृष्ट और अदृष्ट जो शुभ है, उसका कथन करते है, अर्थात् दृष्ट और अदृष्ट रुप से क्या शुभ और क्या अशुभ है, बताते हैं।

NOTE;-

(इस अंक में भगवान शिव ने माँ पार्वती को विभिन्न प्रकार से स्वर की महिमा समझाई है।)

20- ये विराट और लघु ब्रह्माण्ड और इनमें स्थित सभी वस्तुएं स्वर से निर्मित हैं और स्वर ही सृष्टि के संहारक साक्षात् महेश्वर (शिव) हैं।

21- स्वर के ज्ञान से बढ़कर कोई गोपनीय ज्ञान, स्वर-ज्ञान से बढ़कर कोई धन और स्वर ज्ञान से बड़ा कोई दूसरा ज्ञान न देखा गया और न ही सुना गया है।

22-- स्वर की शक्ति से शत्रु पराजित हो जाता है, बिछुड़ा मित्र मिल जाता है। यहाँ तक कि माता लक्ष्मी की कृपा, यश और सुख, सब कुछ मिल जाता है।

23- स्वर ज्ञान द्वारा पत्नी की प्राप्ति, शासक से मिलन, देवताओं की सिद्धि मिल जाती है और राजा भी वश में हो जाता है।

24-अनुकूल स्वर के समय यात्रा करनी चाहिए, स्वादिष्ट भोजन करना चाहिए तथा मल-मूत्र विसर्जन भी अनुकूल स्वर के काल में ही करना चाहिए।

25-हे वरानने, सभी शास्त्रों, वेदों, वेदान्तों, पुराणों और स्मृतियों द्वारा बताया गया कोई ज्ञान या तत्व स्वर ज्ञान से बढ़कर नहीं है।

26-- जब तक तत्वों का पूर्ण ज्ञान नहीं हो जाता, तब तक हम अज्ञान के वशीभूत होकर नाम आदि के मिथ्या भवजाल में फंसे रहते हैं।

27- स्वरोदय शास्त्र सभी उत्तम शास्त्रों में श्रेष्ठ है जो हमारे आत्मारूपी घट (घर) को दीपक की ज्योति के रूप में आलोकित करता है।

28-इस परम विद्या का उद्देश्य मात्र भौतिक जगत सम्बन्धी अथवा अन्य उपलब्धियों से जुड़े प्रश्नों के उत्तर पाना नहीं है। बल्कि आत्म-साक्षात्कार हेतु इस विद्या को स्वयं सीखना चाहिए और निष्ठापूर्वक इसका अभ्यास करना चाहिए।

29-स्वरज्ञानी को किसी काम को प्रारम्भ करने के लिए ज्योतिषीय दृष्टिकोण से शुभ तिथि, नक्षत्र, दिन, ग्रहदेवता, भद्रा, व्यतिपात और योग (वैधृति आदि) आदि के विचार करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। अर्थात् कार्य के अनुकूल स्वर और तत्व के उदय काल में कभी भी कार्य प्रारम्भ किया जा सकता है।

30-हे देवि, यदि कोई व्यक्ति दुर्भाग्य से कभी नास्तिक हो जाये, तो स्वरोदय ज्ञान प्राप्त कर लेने पर वह पुन: पावन हो जाता है और उसे भी शुभ फल ही मिलते हैं।

31- मनुष्य के शरीर मेें अनेक नाड़ियों का जाल बिछा हुआ है। बुद्धिमान लोगों को अपने शरीर को अच्छी तरह जानने के लिए इनके विषय में अवश्य जानना चाहिए।

32– शरीर में नाभि केंद्र से ऊपर की ओर अंकुर की तरह निकली हुई हैं और पूरे शरीर में व्यवस्थित ढंग से फैली हुई हैं।

33– इन नाड़ियों मेः सर्पाकार कुण्डलिनी शक्ति सोती हुई निवास करती है। वहां से दस नाड़ियां ऊपर की ओर गयी हैं और दस नीचे की ओर।

34 – दो-दो नाड़ियाँ शरीर के दोनों ओर तिरछी गयी हैं। इस प्रकार दस ऊपर, दस नीचे और चार शरीर के दोनों तिरछी जाने वाली नाड़ियाँ संख्या में चौबीस हैं। किन्तु उनमें दस नाडियाँ मुख्य हैं जिनसे होकर दस प्राण हमारे शरीर में निरन्तर प्रवाहित होते रहते हैं।

35- ऊपर और नीचे विपरीत कोणों से निकलने वाली ये नाड़ियाँ शरीर में जहाँ आपस में मिलती हैं वहाँ ये चक्र का आकार बना लेती हैं। किन्तु इनका नियंत्रण प्राण शक्ति से ही होता है।

37– इन चौबीस नाडियों में दस श्रेष्ठ हैं और उनमें भी तीन सर्वोत्तम हैं – इडा, पिंगला और सुषुम्ना।

38-A– उक्त तीन नाड़ियों के अलावा सात नाड़ियाँ हैं – गांधारी, हस्तिजिह्वा, पूषा, यशस्विनी, अलम्बुषा, कुहू और शंखिनी।

NOTE;-

इस अंक में नाड़ियों की स्थिति तथा प्राणों के नाम सहित स्थान का विवरण दिया जा रहा हैः- उक्त चार श्लोकों को अर्थ सुविधा की दृष्टि से एक साथ लिया जा रहा है।

(38-से 41 तक)शरीर के बाएँ भाग में इडा नाड़ी, दाहिने भाग में पिंगला, मध्य भाग में सुषुम्ना, बाईं आँख में गांधारी, दाहिनी आँख में हस्तिजिह्वा, दाहिने कान में पूषा, बाएँ कान में यशस्विनी, मुखमण्डल में अलम्बुषा, जननांगों में कुहू और गुदा में शांखिनी नाड़ी स्थित है। इस प्रकार से दस नाड़ियाँ शरीर के उक्त अंगों के द्वार पर

अर्थात् ये अंग जहाँ खुलते हैं, वहाँ स्थित हैं। इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना ये तीन नाड़ियाँ प्राण मार्ग में स्थित हैं। इस प्रकार दस नाडियाँ उक्त अंगों में शरीर के मध्य भाग में स्थित हैं।

(42 से-47 तक) - हे शिवे, नाड़ियों के बाद अब मैं तुम्हें इनसे संबंधित वायुओं (प्राणों) के विषय में बताऊँगा। इनकी भी संख्या दस है। दस में पाँच प्रमुख प्राण है और पाँच सहायक प्राण हैं। पाँच मुख्य वायु (प्राण) है- प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान। सहायक प्राण वायु हैं - नाग, कूर्म, कृकल (कृकर), देवदत्त और धनंजय। प्रमुख पाँच प्राणों की स्थिति निम्नवत है। प्राण वायु स्थिति प्राण हृदय अपान उत्सर्जक अंग समान नाभि उदान कंठ व्यान पूरे शरीर में पाँच सहायक प्राण-वायु के कार्य निम्न लिखित हैं- सहायक प्राण-वायु कार्य नाग डकार आना कूर्म

पलकों का झपकना कृकल छींक आना देवदत्त जम्हाई आना धनंजय यह पूरे शरीर में व्याप्त रहता है मृत्यु के बाद भी कुछ तक समय यह शरीर में बना रहता है। इस प्रकार ये दस प्राण वायु दस नाड़ियो से होकर शरीर में जीव के रुप में भ्रमण करते रहते हैं, अर्थात् सक्रिय रहते हैं।

48– इडा, पिङ्गला और सुषुम्ना तीनों नाड़ियों की सहायता से शरीर के मध्य भाग में प्राणों के संचार को प्रत्यक्ष करना चाहिए। यहाँ शरीर के मध्य के दो अर्थ निकलते हैं- पहला नाभि और दूसरा मेरुदण्ड।

49– इडा नाडी बायीं ओर स्थित है तथा पिङ्गला दाहिनी ओर। अतएव इडा को वाम क्षेत्र और पिंगला को दक्षिण क्षेत्र कहा जाता है।

50– चंद्रमा इडा नाडी में स्थित है और सूर्य पिङ्गला नाडी में तथा सुषुम्ना स्वयं शिव-स्वरूप है। भगवान शिव का वह स्वरूप हंस कहलाता है, अर्थात् जहाँ शिव और शक्ति एक हो जाते हैं और श्वाँस अवरुद्ध हो जाती है। क्योंकि-

51 –तंत्रशास्त्र और योगशास्त्र की मान्यता है कि जब हमारी श्वाँस बाहर निकलती है तो "हं" की ध्वनि निकलती है और जब श्वाँस अन्दर जाती है तो "सः (सो)" की। हं को शिव- स्वरूप माना जाता है और सः या सो को शक्ति-रूप।

52–वायीं नासिका से प्रवाहित होने वाला स्वर चन्द्र कहलाता है और शक्ति का रूप माना जाता है। इसी प्रकार दाहिनी नासिका से प्रवाहित होने वाला स्वर सूर्य कहलाता है, जिसे शम्भु (शिव) का रूप माना जाता है।

53– श्वास लेते समय विद्वान लोग जो दान देते हैं, वह दान इस संसार में कई करोड़गुना हो जाता है।

54 -एकाग्रचित्त होकर योगी चन्द्र और सूर्य नाड़ियों की गतिविधियों के द्वारा सबकुछ जान लेता है।

55-जब मन एकाग्र हो तो तत्व चिन्तन करना चाहिए। किन्तु जब मन अस्थिर हो तो ऐसा करना उचित नहीं है। जो ऐसा करता है उसे इष्ट-सिद्धि, हर प्रकार के लाभ और सर्वत्र विजय उपलब्ध होते हैं।

56 – जो मनुष्य (साधक) अभ्यास करके चन्द्र और सूर्य नाडियों में सन्तुलन बना लेते हैं, वे त्रिकालज्ञ हो जाते हैं।

57– बायीं ओर स्थित इडा नाडी अमृत प्रवाहित कर शरीर को शक्ति और पोषण प्रदान करती है तथा दाहिनी ओर स्थित पिंगला नाडी शरीर को विकसित करती है।

58– मध्यमा अर्थात सुषुम्ना किसी भी काम के लिए सदा क्रूर और असफलता प्रदान करने वाली है (आध्यात्मिक साधना या उपासना आदि को छोड़कर)। अर्थात् उत्तम भाव से किया कार्य भी निष्फल होता है। जबकि इडा नाडी के प्रवाह काल में किये गये शुभकार्य सदा सिद्धिप्रद होते हैं।

59–बाएँ स्वर के प्रवाह के समय घर से बाहर जाना शुभ होता है और दाहिने स्वर के प्रवाह काल में अपने घर में या किसी के घर में प्रवेश शुभ दायक होता है। चन्द्र स्वर को सदा सम और सूर्य स्वर को विषम समझना चाहिए। अर्थात् च न्द्र स्वर को स्थिर और सूर्य स्वर को चंचल या गतिशील मानना चाहिए।

60–चन्द्र नाडी का प्रवाह स्त्री रूप या शक्ति स्वरूप तथा सूर्य नाडी का प्रवाह पुरुष रूप या शिव स्वरूप माना जाता है। चन्द्र नाडी गौर तथा सूर्य नाडी श्याम वर्ण की मानी जाती है। चन्द्र नाडी के प्रवाह काल में सौम्य कार्य करना उचित है।

61 – सूर्य नाडी के प्रवाह काल में श्रमपूर्ण कठोर कार्य करना चाहिए और सुषुम्ना के प्रवाह काल में इन्द्रिय सुख तथा मोक्ष प्रदान करने वाले कार्य करना चाहिए।

62- शुक्ल पक्ष में प्रथम तीन दिन सूर्योदय के समय चन्द्र स्वर प्रवाहित होता है और कृष्ण पक्ष में सूर्य स्वर और तीन-तीन दिन पर इनके उदय का क्रम बदलता रहता है। इस प्रकार स्वरोदय काल का क्रम समझना चाहिए।

63 - पिछले श्लोक में बताए गए क्रम से शुक्ल पक्ष में चन्द्र स्वर और कृष्ण पक्ष में सूर्य स्वर प्रतिदिन क्रम से ढाई-ढाई घटी अर्थात एक-एक घंटे साठ घटियों में प्रवाहित होते हैं यदि उनमें किसी प्रकार का अवरोध न किया जाए। घटी के हिसाब से साठ घटी का दिन-रात होता है। इस प्रकार ढाई घटी का एक घंटा होता है।

64 - प्रत्येक नाड़ी के एक घंटे के प्रवाह काल में पाँचो तत्वों- पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश का उदय होता है। यदि उपर्युक्त श्लोकों में बताए गए क्रम से प्रातःकाल स्वरों का क्रम न हो तो उन्हें परिवर्तित कर ठीक कर लेना चाहिए, अन्यथा कोई भी शुभ कार्य नहीं करना चाहिए।

65 - शुक्लपक्ष की प्रतिपदा को इड़ा तथा कृष्ण-पक्ष की प्रतिपदा को पिंगला नाड़ी चलनी चाहिए। तब योगी को दत्तचित्त होकर कार्य करना चाहिए। उसमें उसे सफलता मिलती है।

66- रात में चन्द्रनाड़ी और दिन में सूर्यनाड़ी को रोकने मे जो सफल हो जाता है वह निस्सन्देह योगी है।

67- सूर्यनाड़ी द्वारा अर्थात् पिंगला नाड़ी द्वारा सूर्य को अर्थात् शरीर में स्थित प्राण ऊर्जा को नियंत्रित किया जाता है तथा चन्द्र नाड़ी अर्थात् इड़ा नाड़ी द्वारा चन्द्रमा को वश में किया जा सकता है। यहाँ चन्द्रमा मन का संकेतक है।

अर्थात् इडा द्वारा मन को नियंत्रित किया जाता है। इस क्रिया को जो जानता है और उसका अभ्यास करके दक्षता प्राप्त कर लेता है, वह तत्क्षण, तीनों लोकों का स्वामी बन जाता है।

68- यदि चन्द्र नाड़ी में स्वर का उदय हो और सूर्यनाड़ी में उसका समापन हो, तो ऐसी स्थिति में मिली सम्पति कल्याणकारी होती है। परन्तु यदि स्वरों का क्रम उल्टा हो, तो कोई लाभ नहीं मिलेगा। अतएव उसे छोड़ देना चाहिए।

69 -शुक्ल पक्ष में विशेषकर सोम, बुध, गुरु और शुक्रवार को चन्द्रनाड़ी अर्थात् वायीं नासिका से स्वर के प्रवाह काल में किए गए सभी कार्यों में सफलता मिलती है।

70 -कृष्ण पक्ष में विशेषकर रवि, मंगल और शनिवार को सूर्यनाडी के प्रवाह काल में किए गए अस्थायी फलदायक कार्यों में सफलता मिलती है।

71- यहाँ प्रत्येक नाड़ी के प्रवाह में पंच महाभूतों के उदय का क्रम बताया गया है, अर्थात् स्वर प्रवाह के प्रारम्भ में वायु तत्व का उदय होता है, तत्पश्चात् अग्नितत्व , फिर पृथ्वी तत्व , इसके बाद जल तत्व और अन्त में आकाश तत्व का उदय होता है।

72 -जैसा कि तिरसठवें श्लोक में आया है कि हर नाड़ी में स्वरों का प्रवाह ढाई घटी अर्थात् एक घंटे का होता है। इस ढाई घटी या एक घंटे के प्रवाह-काल में पाँचों तत्व पिछले श्लोक में बताए गए क्रम से उदित होते हैं। इन तत्त्वों का प्रत्येक नाड़ी में अलग-अलग अर्थात् चन्द्र नाड़ी और सूर्य नाड़ी दोनों में अलग-अलग किन्तु एक ही क्रम में तत्वों का उदय होता है।

73 - दिन और रात, इन चौबीस घंटों में बारह संक्रम अर्थात् राशियाँ होती हैं। इनमें वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन राशियाँ चन्द्रनाडी में स्थित हैं।

74 -मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु और कुम्भ राशियाँ सूर्य नाड़ी में स्थित हैं। शुभ और अशुभ कार्यों के निर्णय हेतु इनका विचार करना चाहिए।

NOTE;-

इस अंक में स्वर विशेष के प्रवाह-काल में किए जाने वाले कार्य विशेष का उल्लेख किया जा रहा है।

75 - चन्द्रमा का सम्बन्ध पूर्व और उत्तर दिशा से है और सूर्य का दक्षिण और पश्चिम दिशा से। अतएव दाहिनी नाक से साँस चलते समय दक्षिण और पश्चिम दिशा की यात्रा प्रारम्भ नहीं करनी चाहिए।

76 - इडा् नाड़ी के प्रवाह के समय उत्तर एवं पूर्व दिशा की यात्रा आरम्भ नहीं करनी चाहिए। 'क्योंकि इड़ा के प्रवाह काल में यात्रा के आरम्भ करने पर रास्ते में डाकुओं द्वारा लुटने का भय होता है या यात्रा से वह घर नहीं लौट पाता।

77- अतएव बुद्धिमान लोग सफलता पाने के उद्देश्य से वर्जित नाड़ी के प्रवाह के दौरान वर्जित दिशा की यात्रा प्रारम्भ नहीं करते, अन्यथा मृत्यु अवश्यंभावी है।

78- यदि शुक्ल पक्ष की द्वितीया को सूर्योदय के समय चन्द्र स्वर प्रवाहित हो, तो लाभ और मित्र के मिलने की संभावना अधिक होती है।

79 - जब सूर्योदय के समय सूर्य स्वर और चन्द्रोदय के समय चन्द्र स्वर बहे, तो उस दिन किए गए सभी कार्य सफल होते हैं।

80- लेकिन जब सूर्योदय के समय चन्द्र नाड़ी और चन्द्रोदय के समय सूर्य नाड़ी प्रवाहित हो, तो उस दिन किए सारे कार्य संघर्षपूर्ण और निष्फल होते हैं।

81- विद्वान लोग कहते हैं कि सूर्य स्वर के प्रवाह काल में किए गए कार्यों में अभूतपूर्व सफलता मिलती है, जबकि चन्द्रस्वर के प्रवाह काल में किए गए कार्यों में ऐसा कुछ नहीं होता।

NOTE;-

इस अंक का प्रतिपाद्य विषय है कि यदि नियत तिथि को प्रात:काल नियत स्वर प्रवाहित न हो तो किस प्रकार के दुष्परिणाम सामने आते हैं या आने की संभावना बनती है।

(82 - 84 श्लोक) प्रात: काल में (सूर्योदय के समय) यदि विपरीत स्वर प्रवाहित होता है, अर्थात् प्रात:काल सूर्य स्वर के स्थान पर चन्द्र स्वर प्रवाहित हो और चन्द्र स्वर के स्थान पर सूर्य स्वर प्रवाहित हो, तो प्रथम काल खण्ड में मानसिक चंचलता होती है, दूसरे कालखण्ड में धनहानि, तीसरे में यात्रा (अनचाही) चौथे में असफलता, पॉचवें में राज्य विध्वंस, छठवें में सर्वनाश, सातवें में शरीर व्याधि और कष्ट तथा आठवें कालखण्ड में मृत्यु।

85- आठ दिनों तक निरन्तर प्रात:, दोपहर और सायंकाल यदि विपरीत स्वर चले, तो सभी कार्यों में असफलता मिलती है और कीर्ति लेशमात्र भी नहीं मिलती।

86 - यदि सूर्योदय काल और मध्याह्न में चन्द्र स्वर और सूर्यास्त के समय सूर्य स्वर प्रवाहित हो तो उस दिन हर तरह की सफलता मिलती है। लेकिन स्वरों का क्रम यदि उल्टा हो, तो शुभ कार्यों को न करना ही बुद्धिमानी है।

87- यात्रा प्रारम्भ करते समय जिस नाक से साँस चल रही हो वही पैर घर से पहले निकाल कर यात्रा करनी चाहिए। इस प्रकार यात्रा निर्विघ्न सफल होती है।

88- यदि चन्द्र स्वर प्रवाहित हो तो समसंख्या में तथा सूर्य स्वर के प्रवाह के समय विषम संख्या में कदम भरना चाहिए। इससे यात्रा सिद्धिप्रद होती है।

NOTE;-

शिव स्वरोदय के इस अंक में मनोकामना की सिद्धि के संदर्भ में दिए गए श्लोकों पर चर्चा की जा रही है।

89- प्रात: काल उठकर यह जाँच करनी चाहिए कि स्वर किस नासिका से प्रवाहित हो रहा है। इसके बाद जिस नासिका से स्वर चल रहा हो उस हाथ के करतल (हथेली) को देखना चाहिए और उसी से चेहरे का वही भाग स्पर्श करना चाहिए। अर्थात् यदि बायीं नासिका से साँस चल रही हो तो बाँए हाथ की हथेली ऊपर से नीचे तक देखनी चाहिए और उससे चेहरे का बायाँ हिस्सा स्पर्श करना चाहिए। यदि दाहिना स्वर चल रहा हो तो दाहिने हाथ से स्पर्श करना चाहिए। ऐसा करने से वांछित फल मिलता है।

(वैसे स्वर-विज्ञानियों ने यह भी सलाह दी है कि विस्तर से उतरते समय (प्रात:काल) उसी ओर का पैर जमीन पर सबसे पहले रखना चाहिए जिस नाक से साँस चल रही हो।)

90- दान देते समय अथवा कुछ भी देते समय या लेते समय उसी हाथ का प्रयोग करना चाहिए जिस नासिका से स्वर प्रवाहित हो रहा हो। इसी प्रकार यात्रा शुरू करते उसी ओर के पैर को घर से पहले निकालना चाहिए जिस नासिका से स्वर प्रवाहित हो रहा हो।

91- उपर्युक्त श्लोक में बताए गए तरीके को जो अपनाते हैं, उन्हें न कभी नुकसान होता है और न ही अवांछित व्यक्तियों से कष्ट होता है। बल्कि इससे उन्हें सुख और शान्ति मिलती है।

92- जब अपने गुरु, राजा, मित्र या मंत्री का सम्मान करना हो तो उन्हें अपने सक्रिय स्वर की ही ओर रखना चाहिए।

93 - जय, लाभ और सुख चाहने वाले को अपने शत्रु, चोर, साहूकार, अभियोग लगाने वाले को रोकने हेतु उन्हें अपने निष्क्रिय स्वर की ओर, अर्थात जिस नासिका से स्वर प्रवाहित न हो उस ओर रखना चाहिए।

94- लम्बी यात्रा का प्रारम्भ बाएँ स्वर के प्रवाह काल में करना चाहिए और कम दूरी की यात्रा दाहिने स्वर के प्रवाह काल में करनी चाहिए।

95- उपर्युक्त फल मनुष्य को तभी मिलते हैं, जब वह ऊपर बताए गए तरीकों को अपनाता है। ऐसा करने पर निश्चित सफलता मिलती है।

96– उपर्युक्त श्लोकों में बताए गई विधियों के विपरीत अर्थात सक्रिय स्वर के विपरीत यदि हम निष्क्रिय स्वर में कार्य करते हैं, तो निश्चित रूप से विपरीत और अवांछित परिणाम होते हैं।

97– यदि किसी के सक्रिय स्वर की ओर कोई दुष्ट या धोखेबाज, शत्रु, ठग, नाराज स्वामी अथवा चोर दिखाई पड़ जाय, तो समझना चाहिये कि उसे खतरा है अर्थात वह सुरक्षित नहीं है।

98– लम्बी यात्रा का आरम्भ करते समय चन्द्र स्वर फलदायक है और किसी कार्यवश किसी के घर में प्रवेश करते समय सूर्य स्वर का सक्रिय होना फलप्रद होता है।

99– जिस व्यक्ति को स्वरोदय विज्ञान की जानकारी नहीं है और वह स्वर के विपरीत अपने कार्य करता है, तो वह उस कार्य के बंधन में बँधा रहता है। इस लिए सदा स्वर के अनुकूल कार्य करना चाहिए।

100 - चन्द्र स्वर के प्रवाह काल में विष से दूर रहना चाहिए। सूर्य स्वर के प्रवाह काल में किसी व्यक्ति को नियंत्रित किया जा सकता है। शून्य स्वर अर्थात सुषुम्ना नाड़ी के प्रवाह काल में मोक्ष-कारक कार्य करना चाहिए। इस प्रकार एक ही स्वर तीन अलग-अलग रूपों में काम करता है।

.....SHIVOHAM...

क्या है प्राचीन ,दुर्लभ एवं गुहय स्वरोदय विज्ञान?(101-200)

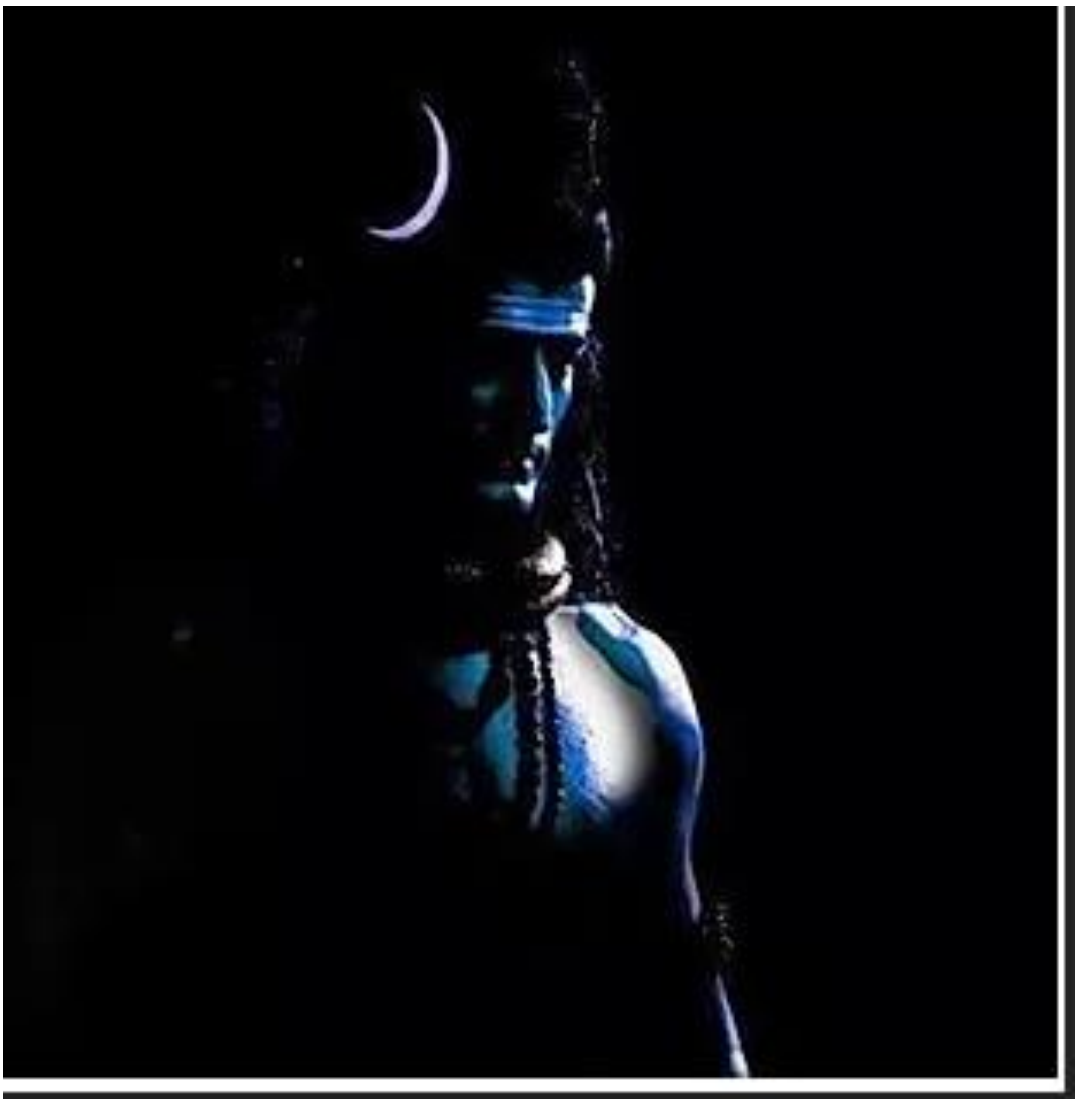

दुर्लभ स्वरोदय शास्त्र ...(101-200)

101– जब दिन अथवा रात के समय किसी व्यक्ति को शुभ-अशुभ कोई भी कार्य करना हो, तो उसे आवश्यकता के अनुसार अपनी नाडी को बदल लेना चाहिए।

NOTE;-

शिवस्वरोदय के इस अंक में इडा नाड़ी के प्रवाह-काल में किए जाने वाले कार्यों का विवरण दिया जा रहा है।

(102 से 105) - तक स्थायी परिणाम देनेवाले जितने भी कार्य हैं, उन्हें इडा अर्थात बाँए स्वर के प्रवाह-काल में प्रारम्भ करना चाहिए, जैसे-सोने के आभूषण खरीदना, लम्बी यात्रा करना, आश्रम-मन्दिर आदि का निर्माण करना, वस्तुओं का संग्रह करना, कुँआ या तालाब खुदवाना, भवन आदि का शिलान्यास करना, तीर्थ-यात्रा करना, विवाह

करना या विवाह तय करना, वस्त्र तथा आभूषण खरीदना, ऐसे कार्य जो शान्ति-पूर्वक योग्य हों उन्हें करना, पोषक पदार्थ ग्रहण करना, औषधि सेवन करना, अपने मालिक से मुलाकात करना, मैत्री करना, व्यापार करना, अन्न संग्रह करना, गृह-प्रवेश करना, सेवा करना, खेती करना, बीज बोना, शुभ कार्यों में लगे लोगों के दल से मिलना आदि।

(106 से 112 तक)- उपर्युक्त कार्यों के अतिरिक्त निम्नलिखित कार्य भी चन्द्र नाड़ी के प्रवाह- काल में प्रारम्भ करना चाहिए- अक्षरारम्भ, मित्र-दर्शन, जन्म, मोक्ष, धर्म, मंत्र-दीक्षा लेना, मंत्र जप या साधना करना, काल-विज्ञान (ज्योतिष) का अभ्यास करना, नये मवेशी को घर लाना, असाध्य रोगों की चिकित्सा, मालिक से संवाद, हाथी और घोड़े की सवारी या उन्हें घुड़साल में बाँधना, धनुर्विद्या का अभ्यास, परोपकार करना, धन की सुरक्षा करना, नृत्य, गायन, अभिनय, संगीत और कला आदि का अध्ययन करना, नगर या गाँव में प्रवेश, तिलक लगाना, जमीन खरीदना, दुखी और निराश लोगों या ज्वर से पीड़ित या मूर्छित व्यक्ति की सहायता करना अपने सम्बन्धियों या स्वामी सम्पर्क करना, ईंधन तथा अन्न संग्रह करना, वर्षा के आगमन के समय स्त्रियों के लिए आभूषण आदि खरीदना, गुरु की पूजा, विष-बाधा को दूर करने के उपाय, योगाभ्यास आदि कार्य इडा नाड़ी के प्रवाह-काल में सिद्धिप्रद होते हैं। लेकिन इडा नाड़ी में वायु, अग्नि अथवा आकाश तत्व सक्रिय हो वैसा नहीं होता, अर्थात इन तत्वों के इडा में प्रवाहित हो तो उक्त कार्य को न करना ही श्रेयस्कर है।

113- दिन हो अथवा रात इडा के प्रवाह-काल में किए गए सभी कार्य सिद्ध होते हैं, अतएव सभी कार्यों के लिए चन्द्र अर्थात इडा नाड़ी का ही चुनाव करना चाहिए।

(पिंगला नाड़ी के प्रवाह-काल में किए जानेवाले कार्य पिछले अंक में इडा नाड़ी के प्रवाह-काल में किए जानेवाले कार्यों के विवरण दिए गए थे। इस अंक में पिंगला नाड़ी के प्रवाह-काल में किए जानेवाले कार्यों के विवरण प्रस्तुत हैं। इस संदर्भ में यहाँ आठ श्लोक दिए गए हैं।)

(114 से121 तक)--पिंगला नाड़ी के प्रवाह के समय निम्नलिखत कार्य प्रारम्भ करने के सुझाव दिए गए हैं जिससे सफलता मिले- कठिन तथा क्रूर विद्याओं का अध्ययन और अध्यापन, स्त्री-समागम, वेश्या-गमन, जलयान की सवारी, भ्रष्ट कार्य, सुरापान, वीर-मंत्रों आदि की साधना, शत्रु पर विजय या उसे विष देना, शास्त्रों का अध्ययन, शिकार करना, पशुओं का विक्रय, ईंट तथा खपरे बनाना, पत्थर तोड़ना, लकड़ी काटना, रत्न-घर्षण, दारुण कार्य करना, गति का अभ्यास, यंत्र-तंत्र की उपासना, किले या पहाड़ पर चढ़ना, जुआ खेलना, चोरी करना, हाथी या घोड़े की सवारी करना या उन्हें नियंत्रित करना, व्यायाम करना; मारण, उच्चाटन, मोहन (वशीकरण), स्तम्भन, शान्ति और विद्वेषण तांत्रिक षट्कर्म की साधना करना, यक्ष-यक्षिणी, वेताल आदि सूक्ष्म जगत के जीवों से सम्बन्धित साधना या सम्पर्क करना, विषधारी जन्तुओं को नियंत्रित करना; गधे, घोड़े, ऊँट, हाथी अथवा भैसे आदि की सवारी, नदी या समुद्र को तैरकर पार करना, औषधि का सेवन, पत्राचार करना, प्रेरित करना, कृषि

कार्य, किसी को क्षुब्ध करना, दान लेना-देना, क्रय-विक्रय, प्रेतात्मओं का आह्वान, शत्रु को नियंत्रित करना या उससे युद्ध करना, तलवार धारण करना, इन्द्रिय सुख का भोग, राज-दर्शन, दावत खाना, स्नान, कठोर कार्य और व्यवहार करना आदि में सूर्य-प्रवाह शुभ होता है।

122– भूख जाग्रत करना, किसी स्त्री को नियंत्रित करना और सोना आदि कार्य बुद्धिमान लोग सफल होने के लिए सूर्य नाड़ी के प्रवाह काल में करते हैं।

123 – सभी प्रकार के क्रूर कार्य और विविध चर कार्य (अस्थायी प्रकृति वाले कार्य) सूर्य नाड़ी के प्रवाह काल में करने पर सिद्ध होते हैं, किसी प्रकार का इसमें संशय नहीं।

सुषुम्ना नाड़ी;-

124 - जब साँस थोड़ी-थोड़ी देर में बाँए से दाहिने और दाहिने से बाँए बदलने लगे तो समझना चाहिए कि सुषुम्ना नाड़ी चल रही है। इसी को शून्य स्वर भी कहा जाता है और यह सब कुछ नष्ट कर देता है।

125 - उस नाड़ी में अर्थात् सुषुम्ना में अग्नि तत्व का प्रवाह काल-रूप होता है। सभी शुभ और अशुभ कार्यों के फल को जलाकर भस्मीभूत कर देता है, अतएव इसे विष के समान समझना चाहिए।

126 - यदि किसी की चन्द्र नाड़ी और सूर्य नाड़ी अपने क्रम में न प्रवाहित होकर एक ही नाड़ी काफी लम्बे समय तक प्रवाहित होती रहे तो समझना चाहिए कि उसका कुछ अशुभ होना है, इसमें कोई संशय नहीं है।

127 - हे सुमुखि, जब क्षण-क्षण में बायीं और दाहिनी नाड़ियाँ अपना क्रम बदलती रहें तो ये विषम भाव की द्योतक होती हैं और उस समय किया गया कार्य आशा के विपरीत फल प्रदान करता है (पर आध्यात्मिक साधनाओं को छोड़कर)।

128 - विद्वान लोग दोनों नाड़ियों का एक साथ प्रवाहित होना विष की तरह मानते हैं। अतएव उस समय क्रूर और सौम्य दोनों ही तरह के कार्यों को न करना ही उचित है। क्योंकि उनका वांछित फल नहीं मिलता है।

129 - सुषुम्ना के प्रवाह काल में जीवन, मृत्यु, लाभ, हानि, जय और पराजय आदि के प्रश्न पर ईश्वर का स्मरण करना चाहिए, अर्थात आध्यात्मिक साधना करना चाहिए।

130 - सुषुम्ना नाड़ी के प्रवाह-काल में जय, लाभ और सुख चाहनेवाले को ईश्वर का चिन्तन और योगाभ्यासादि कर्म करना चाहिए, इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं करना चाहिए।

131 - सूर्य स्वर के प्रवाह के बाद बार-बार सुषुम्ना के प्रवाहित होने पर न ही किसी को शाप देना चाहिए और न ही वरदान। क्योंकि इस स्थिति में सब निरर्थक होता है।

132 - स्वरों के संक्रमण और तत्वों के संक्रमण के समय अर्थात दो स्वरों और दो तत्त्वों के मिलन के समय कोई भी शुभ कार्य- पुण्य, दानादि कार्य नहीं करना चाहिए।

133- विषम स्वर के प्रवाह काल में यात्रा प्रारम्भ करने का विचार मन में उठने नहीं देना चाहिए, क्योंकि इससे यात्रा में कठिनाई तो आती ही है, हानि भी होती है। यहाँ तक कि मृत्यु भी हो सकती है।

134 - यदि चन्द्र स्वर प्रवाहित हो रहा हो और कोई सामने से आए, बायें से आए अथवा ऊपर से या सामने, बायें या ऊपर की ओर विराजमान हो, तो समझना चाहिए कि उससे आपका काम पूरा होगा। इसी प्रकार जब सूर्य नाड़ी प्रवाहित हो रहा हो, तो नीचे, पीछे अथवा दाहिने से आनेवाला या उक्त दिशाओं में विराजमान व्यक्ति आपको शुभ संदेश देगा या आपका काम पूरा करेगा। किन्तु यदि स्थितियाँ इनके विपरीत हों, तो देशिकों (आध्यात्मिक गुरुजनों) को समझना चाहिए कि वह काल बिलकुल रिक्त और अविवेकपूर्ण है, अर्थात कार्य में सफलता के लिए उचित समय नहीं है।

135- पिछले श्लोक की ही भाँति इस श्लोक में भी वे ही बातें दूत के बारे में कही गयी हैं, अर्थात चन्द्र स्वर के प्रवाह काल में यदि कोई दूत बायें, ऊपर या सामने से आए अथवा सूर्य-स्वर के प्रवाह-काल में यदि वह दाहिने, नीचे या पीछे से आए तो समझना चाहिए कि वह कोई शुभ समाचार लाया है। ऐसा न हो तो विपरीत परिणाम समझना चाहिए।

136 - जब इडा और पिंगला स्वर एक-दूसरे में लय हो जाते हैं, तो वह समय बड़ा ही भीषण होता है। अर्थात् सुषुम्ना स्वर का प्रवाह-काल बड़ा ही विषम होता है। क्योंकि सुषुम्ना को निराहार और स्थिर माना गया है। वह सूक्ष्म तत्व में लय हो जाती है जिसे सज्जन लोग संध्या कहते हैं।

137। - ज्ञानी लोग कहते हैं कि वेद स्वयं वेद नहीं होते, बल्कि ईश्वर का ज्ञान जिससे होता है उसे वेद कहते हैं, अर्थात जब साधक समाधि में प्रवेश कर परम चेतना से युक्त होता है उस अवस्था को वेद कहते हैं।

138– दिन और रात का मिलन संध्या नहीं है, यह तो मात्र एक बाह्य प्रक्रिया है। वास्तविक संध्या तो सुषुम्ना नाड़ी में स्वर के प्रवाह को कहते हैं।

139 – माँ पार्वती भगवान शिव से पूछती हैं – हे देवाधिदेव, हे महादेव, हे जगत के उद्धारक, अपने हृदय में स्थित इस गुह्य ज्ञान के बारे में और अधिक बताने की कृपा करें।

140 - माँ पार्वती के ऐसा पूछने पर भगवान शिव बोले- हे सुन्दरि, स्वरज्ञान सर्वश्रेष्ठ और अत्यन्त गुप्त विद्या है एवं सबसे बड़ा इष्ट देवता है। इस स्वर-ज्ञान में जो योगी सदा रत रहता है, वह योगी सर्वश्रेष्ठ माना जाता है।

141– पूरी सृष्टि पाँच तत्व (आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी) से ही रची गयी है और वह इन्हीं तत्वों में विलीन होती है। परम तत्व इन तत्वों से बिलकुल परे है और वह निरंजन है, अर्थात् अजन्मा है।

142 – योगी लोग सिद्ध योग से तत्वों को जान लेते हैं। वे स्वरज्ञानी इन पंच महाभूतों के दुष्प्रभावों को भली-भाँति समझते हैं और इसलिए वे भी इनसे परे हो जाते हैं।

143– पंच भूतों से निर्मित सृष्टि को तत्त्व के रूपो में, अर्थात पृथिवी, जल, तेज (अग्नि), वायु और आकाश को उनके सूक्ष्म रूपों में उन्हें जान लेता है, उनका साक्षात्कार कर लेता है, वह पूज्य बन जाता है।

144 – भूलोक से सत्यलोक तक सभी लोकों में अस्तित्व-गत देह में तत्त्व भिन्न नहीं होते, अर्थात् पाँच तत्वों से ही निर्मित होता है। लेकिन अस्तित्व प्रत्येक स्तर पर नाड़ियों का भेद अलग हो जाता है।

तत्व-विज्ञान;-

145– भगवान शिव कहते हैं कि चाहे बाँया स्वर चल रहा हो या दाहिना, दोनों ही स्वरों के प्रवाह-काल के दौरान बारी-बारी से पंच महाभूतों का उदय होता है। हे सुन्दरि, तत्व-विज्ञान आठ प्रकार का होता है। उन्हें मैं बताता हूँ, ध्यान से सुनो।

146 –पहले भाग में तत्वों की संख्या होती है, दूसरे भाग में स्वर का मिलन होता है, तीसरे भाग में स्वर के चिह्न होते हैं और चौथे भाग में स्वर का स्थान आता है। पाँचवें भाग उनके (तत्वों के) वर्ण (रंग) होते हैं। छठवें भाग में प्राण का स्थान होता है। सातवें भाग में स्वाद का स्थान होता है और आठवें में उनकी दिशा।

148 - हे कमलनयनी, इस प्रकार यह प्राण आठ प्रकार से सम्पूर्ण चर और अचर विश्व में व्याप्त है, अतएव स्वर-ज्ञान से बढ़कर दूसरा कोई ज्ञान नही है।

149 – अतएव तड़के उठकर भोर से ही यत्न पूर्वक स्वर का निरीक्षण करना चाहिए। इसीलिए काल के बन्धन से मुक्त होने के लिए योगी लोग स्वर-ज्ञान में विहित कर्म करते हैं, अर्थात् स्वर-ज्ञान के अन्तर्गत बताई गयी विधियों का अभ्यास करते हैं।

NOTE;-

इस अंक में वे श्लोक आए हैं जिसमें पंच महाभूतों की पहिचान से सम्बन्धित विचार किया गया है।

150 – इस श्लोक मे षण्मुखीमुद्रा (योनिमुद्रा) की विधि बतायी गयी है। इस मुद्रा के अभ्यास से रंगों द्वारा तत्वों की पहिचान की जाती है। इसमें हाथ के दोनों अंगूठों द्वारा दोनों कान, माध्यिका अंगुलियों से दोनों नासिका छिद्र, अनामिका और कनिष्ठिका अंगुलियों से मुख और तर्जनी अंगुलियों से दोनों आँखें बन्द करनी चाहिए। इसे षण्मुखी मुद्रा कहा गया है।

वैसे महान स्वरयोगीयो ने इसके अभ्यास की निम्नलिखित विधि बतायी है-

1. सर्वप्रथम किसी भी ध्यानोपयोगी आसन में बैठें।

2. आँखें बन्द कर लें, काकीमुद्रा में मुँह से साँस लें, साँस लेते समय ऐसा अनुभव करें कि प्राण मूलाधार से आज्ञाचक्र की ओर ऊपर की ओर अग्रसर हो रहा है।

3. साँस को जितनी देर तक आराम से रोक सकते हैं, अन्दर रोकें। साथ ही जैसा श्लोक में आँख, नाक, कान आदि अंगुलियों से बन्द करने को कहा गया है, वैसा करें, खेचरी मुद्रा (जीभ को उल्टा करके तालु से लगाना) के साथ

अर्ध जालन्धर बन्ध लगाएँ (थोड़ा सिर इस प्रकार झुकाना कि ठोड़ी छाती को स्पर्श न करे) और चेतना को आज्ञाचक्र पर टिकाएँ।

4. सिर को सीधा करें और नाक से सामान्य ढंग से साँस छोड़ें।

5. यह एक चक्र हुआ। ऐसे पाँच चक्र करने चाहिए। प्रत्येक चक्र के बाद कुछ क्षणों तक विश्राम करें, आँख बन्द रखें। अभ्यास के बाद थोड़ी देर तक शांत बैठें और चिदाकाश (आँख बन्द करने पर सामने दिखने वाला रिक्त स्थान) को देखें। इसमें दिखायी पड़ने वाले रंग से सक्रिय तत्व की पहिचान करते हैं, अर्थात् पीले रंग से पृथ्वी, सफेद रंग से जल, लाल रंग से अग्नि, नीले या भूरे रंग से वायु और बिल्कुल काले या विभिन्न रंगों के मिश्रण से आकाशतत्व समझना चाहिए।

151– यह श्लोक भी अन्वित क्रम में है, अतएव अन्वय आवश्यक नही है। भावार्थ – षण्मुखी मुद्रा के अभ्यास के अंत में तत्व प्रकट होते हैं, अर्थात् चिदाकाश में रंग पीला, सफेद, लाल, नीला तथा अनेक वर्णों का मिश्रण (बिन्दुदार) दिखायी देता है।

152 - जल तत्व का रंग सफेद, पृथ्वी तत्व का पीला, अग्नि तत्व का लाल, वायुतत्व का नीला या भूरा और आकाश तत्व का मिश्रित रंग होता है

153 -154 – इन श्लोकों में दर्पण के माध्यम से आकार द्वारा तत्वों को पहचानने का तरीका बताया गया है। इसके अनुसार दर्पण चेहरे के पास लाकर उसपर साँस छोड़ते हैं। परिणाम स्वरूप वाष्प-कण से दर्पण पर आकृति बनती है। उस आकृति से सक्रिय तत्व की पहिचान होती है, अर्थात् चतुर्भुज की आकृति बनने पर स्वर में पृथ्वीतत्व को सक्रिय मानना चाहिए, अर्द्धचन्द्र सी आकृति बने तो जलतत्व , त्रिभुजाकार हो तो अग्नितत्व , वृत्ताकार वायु तत्व और बिना किसी निश्तित आकृति के वाष्प-कण इधर-उधर बिखरे हों तो आकाश तत्व को सक्रिय मानना चाहिए।

155 – इस श्लोक में स्वर के प्रवाह की दिशा में विचलन से तत्त्वों की पहिचान का तरीका बताया गया है। वैसे यह विधि काफी सजग निरीक्षण के लम्बे अभ्यास के बाद ही इस विधि से स्वर में सक्रिय तत्व की पहिचान सम्भव है। इसमें यह बताया गया है कि पृथ्वी तत्व का प्रवाह मध्य में, जल तत्त्व का नीचे की ओर, अग्नि तत्व का ऊपर की ओर तथा वायु तत्व का प्रवाह तिरछा होता है। जब साँस दोनों नासिका-रन्ध्रों से समान रूप से एक साथ प्रवाहित हो, तो आकाश तत्व को सक्रिय समझना चाहिए।

156 – इस श्लोक में शरीर में पंचमहाभूतों की स्थिति बताई गयी है। अग्नितत्व का स्थान दोनों कंधों में, वायु का नाभि में, पृथ्वी का जाँघों में, जल का पैरों में और आकाश तत्व का स्थान मस्तक में कहा गया है।

157 - इस श्लोक में पंच महाभूतों के स्वाद के विषय में चर्चा की गयी है। पृथ्वी का स्वाद मधुर, जल का कषाय, अग्नि का तीक्ष्ण, वायु का अम्लीय (खट्टा) और आकाश का स्वाद कटु बताया गया है।

158 – यहाँ श्वाँस में पंच महाभूतों के उदय के अनुसार इसमें (प्रश्वास) की लम्बाई में परिवर्तन की ओर संकेत किया गया है। जब साँस में वायु तत्व की प्रधानता या उसका उदय हो, तो प्रश्वास की लम्बाई आठ अंगुल, अग्नि तत्व के उदय काल में चार अंगुल, पृथ्वी तत्व के समय बारह अंगुल और जलतत्व के समय सोलह अंगुल होती है।

159 – जब स्वर का प्रवाह ऊपर की ओर हो, अर्थात स्वर में अग्नि तत्व प्रवाहित हो, तो मारण की साधना प्रारम्भ करना उचित है। स्वर की गति नीचे की ओर हो, अर्थात स्वर में जल तत्व का उदय काल शांतिपूर्ण कार्य के लिए उचित होता है। स्वर का प्रवाह यदि तिरछा हो, अर्थात वायु तत्व का उदयकाल हो, तो उच्चाटन जैसी साधना के प्रारम्भ के लिए उचित समय होता है। पर स्वर का प्रवाह मध्य में होने पर, अर्थात पृथ्वी तत्व के प्रवाह-काल में स्तम्भन सम्बन्धी साधना का प्रारम्भ ठीक होता है। लेकिन आकाश तत्व के उदय काल को मध्यम, अर्थात किसी भी कार्य के लिए अनुपयोगी बताया गया है।

160 – पृथ्वी तत्व के उदय-काल में स्थायी प्रकृति के कार्य का प्रारम्भ श्रेयस्कर होता है, जल तत्व के समय अस्थायी कार्य, अग्नि तत्व के समय श्रम-साध्य कठिन कार्य तथा वायु तत्व के प्रवाह में मारण, उच्चाटन जैसे दूसरों को हानि पहुँचाने कार्य करने चाहिए।

161 – आकाश तत्व के प्रवाह काल में कोई भी कार्य नहीं करना चाहिए। यह समय केवल योग का अभ्यास करने योग्य है। यह सभी कार्यों के परिणाम को शून्य कर देता है, अर्थात कोई फल नहीं मिलता। इसलिए योग साधना के अलावा और कोई कार्य करने के विषय में सोचना भी नहीं चाहिए।

162 – पृथ्वी और जल तत्वों के प्रवाह काल में प्रारम्भ किए कार्य सिद्धिदायक होते हैं, अग्नि तत्व में प्रारम्भ किए गए कार्य मृत्युकारक, अर्थात नुकसानदेह होते हैं, वायु तत्व में प्रारम्भ किए गए कार्य सर्वनाश करनेवाले होते हैं, जबकि आकाश तत्व के प्रवाह काल में शुरु किए गए कार्य कोई फल नहीं देते, ऐसा तत्ववादियों का मानना है।

163 - पृथ्वी तत्व के प्रवाह काल में प्रारम्भ किये गये कार्य में स्थायी लाभ मिलता है, जल तत्व में दक्षिण लाभ मिलता है, अग्नि और वायु तत्व हानिकारक होते हैं और आकाश तत्व परिणामहीन होता है।

164- पृथ्वी तत्व का वर्ण पीला है। यह धीमी गति से मध्य में प्रवाहित होता है। इसकी प्रकृति हल्की और उष्ण है। ठोढ़ी तक इसकी ध्वनि होती है। इसके प्रवाह के दौरान किए गए कार्यों में भी स्थायी रूप से सफलता मिलती है।

165 - जल तत्व श्वेत वर्ण का होता है। इसका प्रवाह तेज और नीचे की ओर होता है। इसके प्रवाह काल में साँस की आवाज अधिक होती है और इस समय साँस सोलह अंगुल (लगभग 12 इंच) लम्बी होती है। इसकी प्रकृति शीतल है। इसके प्रवाह काल में प्रारम्भ किये गये कार्य सफलता (क्षणिक) मिलती है।

166 - अग्नि तत्व रक्तवर्ण है। यह घुमावदार तरीके से प्रवाहित होता है। इसकी प्रकृति काफी उष्ण है। इसके प्रवाह काल में साँस की लम्बाई चार अंगुल और ऊपर की ओर होती है। इसे क्रूरतापूर्ण कार्यों के लिए उपयोगी बताया गया है।

167 - वायु तत्व कृष्ण वर्ण (गहरा नीला रंग) है, इसके प्रवाह के समय साँस की लम्बाई आठ अंगुल और गति तिर्यक (तिरछी) होती है। इसकी प्रकृति शीतोष्ण हैं। इस अवधि में गति वाले कार्यों को प्रारम्भ करने पर निश्चित रूप से सफलता मिलती है।

168 – जब स्वर में उक्त सभी तत्वों का संतुलन हो और उनके यथोक्त गुण उपस्थित हों तो उसे योगियों को मोक्ष प्रदान करनेवाला आकाश तत्व समझना चाहिए, अर्थात आकाश तत्व में अन्य चार तत्वों का संतुलन पाया जाता है और उनके गुण भी पाए जाते हैं तथा इसके प्रवाह काल किए गये योग-साधना में पूर्णरूप से सिद्धि मिलती है।

169– पृथ्वी तत्व का पीला, वर्ग का आकार, मधुर स्वाद, गति मध्य और प्रवाह बारह अंगुल (लगभग नौ इंच) होता है। इसे भोग-विलास के लिए उपयुक्त बताया गया है।

170 – जल तत्व का रंग श्वेत होता है, आकार अर्धचन्द्र की तरह, स्वाद कषाय और स्वभाव शीतल होता है। इसके प्रवाह काल में साँस की लम्बाई सोलह अंगुल (लगभग बारह इंच) होती है। यह हमेशा लाभकारी होता है।

171 – अग्नि तत्व का रंग लाल (रक्त जैसा लाल), आकार त्रिभुज, प्रवाह ऊपर की होता है। इस तत्व तत्त्व के प्रवाह काल में साँस की लम्बाई चार अंगुल (लगभग तीन इंच) होती है। इसकी प्रकृति गरम होती है और यह अशुभ कार्य का प्रेरक होता है तथा सदा अहितकर फल देता है।

172। – वायु तत्व का रंग नीला, गोल आकार और अम्लीय स्वाद होता है। इसकी गति तिरछी होती है और इसके प्रवाह काल में साँस की लम्बाई आठ अंगुल (लगभग छः इंच)। इसकी प्रकृति चंचल होती है। इसके प्रवाहकाल में प्रारम्भ किये गये कार्य का परिणाम विनाशकारी होते हैं।

173 – आकाश तत्व का रंग पहचानना कठिन होता है। यह स्वादहीन और प्रत्येक दिशा में गतिवाला होता है। यह मोक्ष प्रदान करता है। आध्यात्मिक साधना के अतिरिक्त अन्य कार्यों में कोई फल नहीं प्राप्त होता है।

174 – पृथ्वी तत्व और जल तत्व कार्य आरम्भ करने के लिए शुभ होते हैं, अर्थात उनके परिणाम अच्छे होते हैं। अग्नि तत्व के प्रवाह काल में प्रारम्भ किए गए कार्य का परिणाम मिला-जुला होता है। जबकि वायु तत्व और आकाश तत्व के प्रवाह काल में कार्य के आरम्भ के परिणाम हानि और सर्वनाश से भरे बताए गए हैं।

तत्वों की दिशाओं;-

175 – इस श्लोक में तत्वों की दिशाओं के संकेत किए गए हैं। पृथ्वी तत्व पूर्व और पश्चिम दिशा में, अग्नितत्व दक्षिण में, वायु तत्व उत्तर में और आकाश तत्व मध्य में कोणगत होता है।

176 – जब चन्द्र स्वर में पृथ्वी अथवा जल तत्व अथवा सूर्य स्वर में अग्नि तत्व के प्रवाह काल में प्रारम्भ किए गए सभी प्रकार के कार्यों में सिद्धि मिलती है, इसमें कोई सन्देह नहीं, अर्थात् इस अवधि में प्रारम्भ किए गए शुभ, अशुभ, स्थायी या अस्थायी सभी कार्य सफल होते हैं।

177 – जब दिन में पृथ्वी तत्व और रात मे जल तत्व प्रवाहित हो तो निश्चित रूप से लाभ होता है। अग्नि तत्व का

प्रवाह काल किसी कार्य के लिए मृत्युकारक कहा गया है और वायुतत्व का प्रवाह काल सर्वनाश का कारक। आकाश तत्व का प्रवाह काल कोई परिणाम नहीं देता।

178 -179-- जीवन, जय, लाभ, खेती, मंत्र, युद्ध एवं यात्रा के सम्बन्ध में प्रश्न पूछे जाने पर उस समय प्रवाहित होने वाले तत्व को समझना चाहिए और तदनुरूप उत्तर देना चाहिए। जल तत्व के समय शत्रु का आने की संभावना होती है। पृथ्वी तत्व का काल शुभ होता है, अर्थात शत्रु पर विजय का संकेतक है। वायु तत्व के प्रवाह काल को शत्रु का पलायन समझना चाहिए। लेकिन वायु तत्व और आकाश तत्व के समय हानि तथा मृत्यु की अधिक संभावना रहती है।

(इस श्लोक में मन में उदित होने वाले विचारों के द्वारा तत्वों को पहचानने की विधि का संकेत किया गया है।)

180 – जब मन में भौतिकता से संबंधित विचार उठ रहे हों, तो समझना चाहिए कि उस समय पृथ्वी तत्व प्रवाहित हो रहा है, अर्थात स्वर में पृथ्वी तत्व की प्रधानता है। जब खुद के विषय में विचार उठें, तो जल तत्व अथवा वायु तत्व की प्रधानता समझनी चाहिए। अग्नि तत्व की प्रधानता होने पर मन में धातुजनित धन सम्बन्धी विचार उठते हैं। पर आकाश तत्व की प्रधानता के समय व्यक्ति का मन लगभग विचार-शून्य होता है।

181 – जब स्वर में पृथ्वी तत्व सक्रिय हो तो अनेक कदम चलिए। जल तत्व और वायुतत्व के प्रवाह काल में दो कदम चलें तथा अग्नि तत्व के प्रवाहित होने पर चार कदम। किन्तु जब आकाश तत्व स्वर में प्रधान हो, अर्थात सक्रिय हो, तो एकदम न चलें।

182 - सूर्य स्वर (दाहिने स्वर) में अग्नितत्व के प्रवाहकाल में मंगल, पृथ्वी तत्व के प्रवाह काल में सूर्य (ग्रह), जल तत्व के प्रवाह में शनि तथा वायु तत्व के प्रवाह काल में राहु का निवास कहा गया है।

183 – पर बाएँ स्वर (इडा नाड़ी) में जलतत्व के प्रवाह काल में चन्द्र ग्रह, पृथ्वी तत्व के प्रवाह में बुध, वायु तत्व के प्रवाह में गुरु और अग्नि तत्व में शुक्र का निवास मना जाता है। उपर्युक्त अवधि में उक्त सभी ग्रह सभी कार्यों के लिए शुभ माने गये हैं। एक बात ध्यान देने की है कि यहाँ केतु का स्थान नहीं बताया गया है ।

184 – इस श्लोक के अनुसार पृथ्वी तत्व बुध के, जल तत्व चन्द्र और शुक्र के, अग्नि तत्व सूर्य और मंगल के, वायु तत्व राहु और शनि के तथा आकाश तत्व गुरु के महत्व को निरूपित करते हैं। अर्थात इन तत्वों के अनुसार काम करनेवाले को यश मिलता है।

(185–186)- यदि कोई आदमी कहीं चला गया हो और दूसरा व्यक्ति उसके बारे में प्रश्न करता है, तो स्वर और उनमें तत्वों के उदय के अनुसार परिणाम को जानकर सही उत्तर दिया जा सकता है। भगवान शिव कहते हैं कि दाहिना स्वर चल रहा हो, स्वर में राहु हो (अर्थात पिंगला नाड़ी में वायु तत्व सक्रिय हो) और प्रश्नकर्त्ता दाहिनी ओर हो, तो इसका अर्थ हुआ कि वह व्यक्ति जहाँ गया था वहाँ से किसी दूसरे स्थान के लिए प्रस्थान कर गया है। यदि प्रश्न काल में जल तत्व (शनि हो) सक्रिय हो, तो समझना चाहिए कि गया हुआ आदमी वापस आ जाएगा। यदि पृथ्वी तत्व की प्रधानता के समय प्रश्न पूछा गया हो, तो समझना चाहिए कि गया हुआ व्यक्ति जहाँ भी है कुशल से

है। पर प्रश्न के समय यदि स्वर में अग्नि तत्व (मंगल हो) का उदय हो, तो समझना चाहिए कि वह आदमी अब मर चुका है।

187 – पृथ्वी तत्व के प्रवाह काल में दुनियादारी के कामों में पूरी सफलता मिलती है, जल तत्व का प्रवाह काल शुभ कार्यों में सफलता देता है, अग्नि तत्व धातु सम्बन्धी कार्यों के लिए उत्तम है और आकाश तत्व चिन्ता आदि परेशानियों से मुक्त करता है।

188 – अतएव जब पृथ्वी और जल तत्व के प्रवाह काल में किसी प्रवासी के विषय में प्रश्न पूछा जाय तो समझना चाहिए कि वह कुशल से है, स्वस्थ और खुश है। पर यदि प्रश्न के समय अग्नि तत्व और वायु तत्व प्रवाहित हो तो समझना चाहिए कि जिसके विषय में प्रश्न पूछा गया है उसे शारीरिक और मानसिक कष्ट है।

189– यदि प्रश्न काल में आकाश तत्व प्रवाहित हो तो समझना चाहिए कि जिसके विषय में प्रश्न पूछा गया वह अपने जीवन के अंतिम क्षण गिन रहा है। इस प्रकार तत्व -ज्ञाता इन बारह प्रश्नों के उत्तर जान लेता है।

190– पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशाओं में पृथ्वी आदि तत्व अपने क्रम के अनुसार प्रबल होते हैं, ऐसा तत्वविदों का मानना है। श्लोक संख्या 175 में तत्वों की दिशाओं का विवरण देखा जा सकता है।

191– हे वरानने, यह देह पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पाँचों तत्वों से मिलकर बना है, ऐसा समझना चाहिए।

NOTE;-
इन श्लोकों में पाँच तत्वों का शरीर में स्थान और उनके गुणों पर प्रकाश डाला गया है।

192– पृथ्वी तत्व के पाँच गुण अस्थि, मांस, त्वचा, स्नायु तथा रोम बताए गए हैं, ऐसा ब्रह्मज्ञानियों का मानना है।

193– शुक्र (वीर्य), रक्त, मज्जा, मूत्र और लार ये पाँच गुण जल तत्व के माने गए हैं, ऐसा ब्रह्मज्ञानियों का कहना है।

194 – भूख, प्यास, नींद, शारीरिक कान्ति और आलस्य ये पाँच गुण अग्नि तत्व के कहे गए ह, ऐसा ब्रह्मज्ञानी कहते हैं।

195– वायु तत्व के पाँच गुण- दौड़ना, चलना, ग्रंथिस्राव, शरीर का संकोचन (सिकुड़ना) और प्रसार (फैलाव) बताए गए हैं, ऐसा ब्रह्मज्ञानी कहते हैं।

196 – राग, द्वेष, लज्जा, भय और मोह आकाश तत्व के ये पाँच गुण कहे गए हैं, ऐसा ब्रह्मज्ञानियों का मत है।

197 – शरीर का पचास भाग पृथ्वी तत्व , चालीस भाग जलतत्व , तीस भाग अग्नि तत्व , बीस भाग वायु तत्व और दस भाग आकाश मानना चाहिए।

NOTE;-यहाँ यह बताना आवश्यक है कि साधक उपर्युक्त विभाजन प्रतिशत में न समझें, बल्कि यह एक अनुपात है। पुनः इसे श्लोक संख्या 199 में स्पष्ट किया गया है।

198– इसीलिए पृथ्वी तत्व के प्रवाहकाल में किया गये कार्य में दीर्घकलिक सफलता मिलती है, जबकि जल तत्व के प्रवाहकाल में किये गये कार्य में सफलता मिलती है, वायु तत्व के प्रवाहकाल में किए गए कार्य में मामूली सफलता मिलती है और अग्नि तत्व के प्रवाह के समय किए गए कार्य में घोर असफलता मिलती है।

199 – पाँच भाग पृथ्वी, चार भाग जल, तीन भाग अग्नि, दो भाग वायु और एक भाग आकाश है। इसे पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश तत्व का 5:4:3:2:1 अनुपात समझना चाहिए।

200 – फुत्कारती हुई प्रस्फुटित, विदीर्ण और पतित पृथ्वी अपनी अवस्था के अनुसार सभी कार्यों में अपना प्रभाव डालती है। CONTD...

...SHIVOHAM...

क्या है प्राचीन ,दुर्लभ एवं गुहय स्वरोदय विज्ञान?(201-300)

201-धनिष्ठा, रोहिणी, ज्येष्ठा, अनुराधा, श्रवण, अभिजित् और उत्तराषाढ़ा नक्षत्रों का सम्बन्ध पृथ्वी तत्व से है।

202- पूर्वाषाढा, श्लेषा, मूल, आर्द्रा, रेवती, उत्तराभाद्रपद और शतभिषा नक्षत्र जल तत्व तत्त्व से सम्बन्धित हैं।

203 – हे प्रिये, भरणी, कृत्तिका, पुष्य, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाभाद्रपद और स्वाति नक्षत्रोंं का अग्नि तत्व से सम्बन्ध है।

204 – विषाखा, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, पुनर्वसु, अश्विनी और मृगषिरा नक्षत्रों का सम्बन्ध वायु तत्व से है।

205– इस श्लोक में चर्चित विवरण इसके पूर्व भी आ चुका है। यहाँ यह बताया गया है कि यदि प्रश्न पूछने वाला सक्रिय स्वर की ओर स्थित है तो उसके प्रश्न का उत्तर सकारात्मक समझना चाहिए। परन्तु यदि निष्क्रिय स्वर की ओर है तो अशुभ फल समझना चाहिए।

206 – दोनों स्वर सक्रिय रहने पर अनुकूल तत्व भी निष्फल परिणाम देते हैं। किन्तु यदि सूर्य स्वर अथवा चन्द्र स्वर प्रवाहित हो और प्रश्नकर्त्ता सक्रिय स्वर की ओर बैठा हो तो उसके प्रश्न का उत्तर वांछित फल प्रदान करनेवाला होगा।

207– अनुकूल तत्वों के कारण ही भगवान राम और अर्जुन युद्ध में विजय पाए। परन्तु प्रतिकूल तत्वों के कारण ही सभी कौरव युद्ध में मारे गए।

208– पूर्व जन्म के संस्कार अथवा गुरु की कृपा से किसी विरले शुद्धचित्तात्मा को ही तत्वों का सम्यक ज्ञान मिलता है।

209– वर्गाकार पीले स्वर्ण वर्ण की आभा वाले पृथ्वी- तत्व का, जिसका बीज मंत्र लं है, ध्यान करना चाहिए। इसके द्वारा शरीर को इच्छानुसार हल्का और छोटा करने की सिद्धि प्राप्त हो जाती है।

210 – अर्धचन्द्राकार चन्द्र-प्रभा वर्णवाले जल- तत्व का, जिसका बीज मंत्र वं है, ध्यान करना चाहिए। इससे भूख-प्यास आदि को सहन करने और इच्छनुसार जल में डूबने की क्षमता प्राप्त होती है।

211 – त्रिकोण आकार और लाल (सूर्य के समान) वर्ण वाले अग्नि- तत्व का ध्यान करना चाहिए। इसका बीज मंत्र रं है। इससे बहुत अधिक भोजन पचाने और सूर्य तथा अग्नि के प्रचंड ताप को सहन करने की क्षमता प्राप्त होती है।

212 – वृत्ताकार श्याम-वर्ण (कहीं-कहीं गहरे नीले रंग का उल्लेख) की आभावाले वायु- तत्व का ध्यान करना चाहिए। इसका बीज-मंत्र यं है। इसका ध्यान करने से आकाश में पक्षियों के समान उड़ने की क्षमता या सिद्धि प्राप्त होती है।

213 – निराकार आलोकमय आकाश तत्व का हं सहित ध्यान करना चाहिए। ऐसा करने से साधक त्रिकालदर्शी हो जाता है और उसे अणिमा आदि अष्ट-सिद्धियों का ऐश्वर्य प्राप्त होता है।

214- भगवान शिव कहते हैं कि हे देवि, स्वरज्ञान से बड़ा कोई भी गुप्त ज्ञान नहीं है। क्योंकि स्वर-ज्ञान के अनुसार कार्य करनेवाले व्यक्ति सभी वांछित फल अनायास ही मिल जाते हैं।

215।– देवी भगवान शिव से कहती हैं- हे देवाधिदेव महादेव, आपने मुझे स्वरोदय का सर्वोच्च ज्ञान प्रदान किया। मुझे अब यह बताने की कृपा करें कि स्वरोदय ज्ञान के द्वारा कोई कैसे भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों काल का ज्ञाता हो सकता है।

216- माँ पार्वती के इस प्रकार पूछने पर भगवान शिव ने कहा- हे सुन्दरि, काल के अनुसार सभी प्रश्नों के उत्तर तीन भागों मेः विभक्त किया जा सकता है- विजय, सफलता और असफलता। स्वरोदय के ज्ञान के अभाव

में इन तीनों को समझ पाना कठिन है।

217– तत्व को त्रिपाद कहा गया है, अर्थात् तत्व के द्वारा ही शुभ और अशुभ, जय और पराजय तथा सुभिक्ष और दुर्भिक्ष को जाना जा सकता है।

218 – भगवान शिव का ऐसा उत्तर पाकर माँ पार्वती ने पुनः उनसे पूछा- हे देवाधिदेव महादेव, सम्पूर्ण भवसिन्धु में मनुष्य का सबसे बड़ा मित्र कौन है और यहाँ वह कौन सी वस्तु है जो उसके सभी कार्यों को सिद्ध करता है?

प्राण ही सबसे बड़ा मित्र ;-

219– माँ पार्वती को उत्तर देते हुए भगवान शिव ने कहा- हे वरानने, इस संसार में प्राण ही सबसे बड़ा मित्र और सबसे बड़ा सखा है। इस जगत में प्राण से बढ़कर कोई बन्धु नहीं है।

220 – माँ पार्वती भगवान शिव से पूछती हैं- प्राण की हवा में स्थिति किस प्रकार होती है, शरीर में स्थित प्राण का स्वरूप क्या है, विभिन्न तत्वों में प्राण (वायु) किस प्रकार कार्य करता है और योगियों को इसका ज्ञान किस प्रकार होता है?

221– भगवान शिव माँ पार्वती को बताते हैं- इस शरीर रूपी नगर में प्राण-वायु एक सैनिक की तरह इसकी रक्षा करता है। श्वास के रूप में शरीर में प्रवेश करते समय इसकी लम्बाई दस अंगुल और बाहर निकलने के समय बारह अंगुल होता है।

222 – चलते-फिरते समय प्राण वायु (साँस) की लम्बाई चौबीस अंगुल, दौड़ते समय बयालीस अंगुल, मैथुन करते समय पैंसठ और सोते समय (नींद में) सौ अंगुल होती है।

223– हे देवि, साँस की स्वाभाविक लम्बाई बारह अंगुल होती है, पर भोजन और वमन करते समय इसकी लम्बाई अठारह अंगुल हो जाती है।

224 – भगवान शिव अब इन श्लोकों में यह बताते हैं कि यदि प्राण की लम्बाई कम की जाय तो अलौकिक सिद्धियाँ मिलती हैं। इस श्लोक में बताया गया है कि यदि प्राण-वायु की लम्बाई एक अंगुल कम कर दी जाय, तो व्यक्ति निष्काम हो जाता है, दो अंगुल कम होने से आनन्द की प्राप्ति होती है और तीन अंगुल होने से कवित्व या लेखन शक्ति मिलती है।

225 – साँस की लम्बाई चार अंगुल कम होने से वाक्-सिद्धि, पाँच अंगुल कम होने से दूर-दृष्टि, छः अंगुल कम होने से आकाश में उड़नः की शक्ति और सात अंगुल कम होने से प्रचंड वेग से चलने की गति प्राप्त होती हैं।

226 – यदि श्वास की लम्बाई आठ अंगुल कम हो जाय, तो साधक को आठ सिद्धियों की प्राप्ति होती है, नौ अंगुल कम होने पर नौ निधियाँ प्राप्त होती हैं, दस अंगुल कम होने पर अपने शरीर को दस विभिन्न आकारों में बदलने की क्षमता आ जाती है और ग्यारह अंगुल कम होने पर शरीर छाया की तरह हो जाता है, अर्थात् उस

व्यक्ति की छाया नहीं पड़ती है।

227– श्वास की लम्बाई बारह अंगुल कम होने पर साधक अमरत्व प्राप्त कर लेता है, अर्थात् साधना के दौरान ऐसी स्थिति आती ह ै कि श्वास की गति रुक जाने के बाद भी वह जीवित रह सकता है, और जब साधक नख-शिख अपने प्राणों को नियंत्रित कर लेता है, तो वह भूख, प्यास और सांसारिक वासनाओं पर विजय प्राप्त कर लेता है।

228 - ऊपर बताई गई प्राण-विधियाँ सभी कार्यों में सफलता प्रदान करती हैं। लेकिन प्राण को नियंत्रित करने की विधियाँ गुरु के सान्निध्य और कृपा से ही प्राप्त किया जा सकता है, विभिन्न शास्त्रों के अध्ययन मात्र से नहीं।

229 – यदि सबेरे चन्द्र स्वर और सायंकाल सूर्य स्वर संयोग से न प्रवाहित हों, तो वे दोपहर में या अर्धरात्रि में प्रवाहित होत े हैं।

230– दूर देश में युद्ध करनेवाले को चन्द्र स्वर के प्रवाहकाल में युद्ध के लिए प्रस्थान करना चाहिए और पास में स्थित देश में युद्ध करने की योजना हो तो सूर्य स्वर के प्रवाहकाल में प्रस्थान करना चाहिए। इससे विजय मिलती है। अथवा प्रस्थान के समय जो स्वर चल रहा हो, वही कदम पहले उठाकर युद्ध के लिए प्रस्थान करने से भी वह विजयी होता है।

231– यात्रा, विवाह अथवा किसी नगर में प्रवेश के समय चन्द्र स्वर चल रहा हो, तो सदा सारे कार्य सफल होते हैं, ऐसा स्वर-वैज्ञानिकों का मत है।

232– सूर्य अथवा चन्द्रमा के अयन के समय यद ि अनुकूल तत्व प्रवाहित हो रहा हो, कुम्भक करने मात्र से अर्थात् साँस को रोक लेने मात्र से बिना युद्ध किए विजय मिलती है, चाहे शत्रु कितना भी बलशाली क्यों न हो।

233– जो व्यक्ति अपनी छाती को कपड़े से ढककर 'जीवं रक्ष' ('जीवं रक्ष जीवं रक्ष')मंत्र का जप करता है, वह विश्व-विजय करता है।

234 – जब स्वर में पृथ्वी या जल तत्व का उदय हो तो वह समय चलने-फिरने और शांत प्रकृति के कार्यों के उत्तम होता है। वायु और अग्नि तत्व का प्रवाह काल गतिशील और कठिन कार्यों के उपयुक्त होता है। लेकिन आकाश तत्व के प्रवाहकाल में कोई भी कार्य न करना ही उचित है।

235 – युद्ध में शत्रु का सामना करते समय जो स्वर प्रवाहित हो रहा हो, उसी हाथ में शस्त्र पकड़कर उसी हाथ से शत्रु पर प्रहार करता है, तो शत्रु पराजित हो जाता है।

236 – यदि किसी सवारी पर चढ़ना हो साँस अन्दर लेते हुए चढ़ना चाहिए और उतरते समय जो स्वर चल रहा हो वही पैर बढ़ाते हुए उतरना चाहिए। ऐसा करने पर यात्रा निरापद और सफल होती है।

237– यदि शत्रु का स्वर पूर्णरूप से प्रवाहित न हो और वह हथियार उठा ले, किन्तु अपना स्वर पूर्णरूपेण प्रवाहमान हो और हम हथियार उठा लें, तो शत्रु पर ही नहीं पूरी दुनिय ा पर विजय प्राप्त कर सकते हैं।

238 – जब व्यक्ति की उचित नाड़ी में उचित स्वर प्रवाहित हो, अभीष्ट देवता की प्रधानता हो और दिशा अनुकूल हो, तो उसकी कभी कामनाएँ निर्बाध रूप से पूरी होती हैं।

NOTE;-यहाँ यह पुनः ध्यान देने की बात है कि श्लोक संख्या 75 के अनुसार चन्द्र स्वर (बाँए) की दिशा उत्तर और पूर्व एवं सूर्य स्वर (दाहिने) की पश्चिम और दक्षिण।

239 – युद्ध करने के पहले मुद्रा का अभ्यास करना चाहिए, तत्पश्चात युद्ध करना चाहिए। जो व्यक्ति सर्पमुद्रा का अभ्यास करता है, उसके कार्य की सिद्धि में कोई संशय नहीं रह जाता।

240 – जब चन्द्र स्वर या सूर्य स्वर में वायु तत्व प्रवाहित हो रहा हो, तो एक योद्धा के लिए युद्ध हेतु प्रस्थान करने का उचित समय माना गया है। पर यदि अनुकूल स्वर प्रवाहित न हो रहा हो और सैनिक युद्ध के लिए प्रस्थान करता है, तो उसका विनाश हो जाता है, इसमें कोई संशय नहीं।

241– जिस स्वर में वायु तत्व प्रवाहित हो रहा हो, उस दिशा में यदि योद्धा बढ़े तो वह इन्द्र को भी पराजित कर सकता है।

242 – किसी भी स्वर में यदि वायु तत्व प्रवाहित हो, तो प्राण को कान तक खींचकर युद्ध के लिए प्रस्थान करने पर योद्धा पुरन्दर (इन्द्र) को भी पराजित कर सकता है।

243 – युद्ध के समय शत्रु के प्रहारों से अपने सक्रिय स्वर की ओर के अंगों की रक्षा कर ले, तो उसे शक्तिशाली से शक्तिशाली शत्रु भी उसे कोई क्षति नहीं पहुँचा सकता।

244– युद्ध के दौरान हाथ के अंगूठे तथा तर्जनी से अथवा पैर के अंगूठे से ध्वनि करने वाला योद्धा बड़े-बड़े बहादुर को भी युद्ध में पराजित कर देता है।

245– विजय चाहनेवाला वीर चन्द्र अथवा सूर्य स्वर में वायु तत्व के प्रवाहकाल के समय यदि किसी भी दिशा में जाय तो उसकी रक्षा होती है।

246 – भगवान शिव कहते हैं, हे सुन्दरी (माँ पार्वती), एक दूत को अपनी मनोकामना पूरी करने के लिए उसे साँस लेते समय अपनी मनोकामना व्यक्त करनी चाहिए। परन्तु यदि वह श्वास छोड़ते समय अपनी मनोकामना व्यक्त करता है, तो उसे सफलता नहीं मिलती।

247– जो कार्य साँस लेते समय किए जाता है, उसमें सफलता मिलती है। पर साँस छोड़ते समय किए गए कार्य में हानि होती है।

248 – दाहिना स्वर पुरुष के लिए और बाँया स्वर स्त्री के लिए शुभ माना गया है। युद्ध के समय कुम्भक (श्वास को रोकना) फलदायी होता है। इस प्रकार तीनों नाड़ियों के प्रवाह भी तीन प्रकार के होते हैं।

249 – स्वर ज्ञान "हं" और "सः" में प्रवेश किए बिना प्राप्त नहीं होता। "सोSहं" अथवा "हंस" पद (मंत्र) के सतत जप द्वारा स्वर ज्ञान की प्राप्ति होती है।

250 – आपत्ति सदा सक्रिय स्वर की ओर से आती है। अतएव आपत्ति के आने की दिशा ज्ञात होने पर

निष्क्रिय स्वर को सक्रिय करने का प्रयास करना चाहिए। निष्क्रिय स्वर सुरक्षा देता है।

251- जब कोई प्रश्नकर्ता युद्ध के विषय में सक्रिय स्वर की ओर से प्रश्न पूछ रहा हो और उस समय कोई भी स्वर, चाहे सूर्य या चन्द्र स्वर प्रवाहित हो, तो युद्ध में उस पक्ष को कोई हानि नहीं होती। पर अप्रवाहित स्वर की दिशा से प्रश्न पूछा गया हो, तो हानि अवश्यम्भावी है। अगले दो श्लोकों में होनेवाली हानियों पर प्रकाश डाला गया है।

252– यदि प्रश्न-काल में उत्तर देनेवाले साधक के स्वर में पृथ्वी तत्व प्रवाहित हो, समझना चाहिए कि पेट में चोट लगने की सम्भावना, जल तत्व , अग्नितत्व और वायु तत्व के प्रवाह काल में क्रमशः पैरों, जंघों और भुजा में चोट लगने की सम्भावना बतायी जा सकती है।

253 – आकाश तत्व के प्रवाह काल में सिर में चोट लगने की आशंका का निर्णय बताया जा सकता है। स्वरशास्त्र इस प्रकार चोट के लिए पाँच अंग विशेष बताए गए हैं।

254– यदि युद्धकाल में चन्द्र स्वर प्रवाहित हो रहा हो, तो जहाँ युद्ध हो रहा है वहाँ का राजा विजयी होता है। किन्तु यदि सूर्य स्वर प्रवाहित हो रहा हो, समझना चाहिए कि आक्रामणकारी देश की विजय होगी।

255–विजय में यदि किसी प्रकार का संदेह हो, तो देखना चाहिए कि क्या सुषुम्ना स्वर प्रवाहित हो रहा है। यदि ऐसा है, तो समझना चाहिए कि शत्रु संकट में पड़ेगा।

256– यदि कोई योद्धा युद्ध के मैदान में अपने क्रियाशील स्वर की ओर से दुश्मन से लड़े तो उसमें उसकी विजय होती है, इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं होती।

257– यदि युद्ध के समय बायीं नाक से स्वर प्रवाहित हो रहा हो, तो जहाँ युद्ध हो रहा है, उस स्थान के राजा की विजय होती है, अर्थात् जिस पर आक्रमण किया गया है, उसकी विजय होती है और शत्रु पर काबू पा लिया जाता है।

258– पर यदि युद्ध के समय लगातार सूर्य स्वर प्रवाहित होता रहे, तो समझना चाहिए कि आक्रमणकारी राजा की विजय होती है, चाहे देवता और दानवों का युद्ध हो या मनुष्यों का।

259-- जो योद्धा बाएँ स्वर के प्रवाहकाल में युद्ध भूमि में प्रवेश करता है, तो उसका शत्रु द्वारा अपहरण हो जाता है। सुषुम्ना के प्रवाहकाल में वह युद्ध में स्थिर रहता है, अर्थात् टिकता है। पर सूर्य स्वर के प्रवाहकाल में वह निश्चित रूप से विजयी होता है।

260 – यदि कोई सक्रिय स्वर की ओर से युद्ध के परिणाम के विषय में प्रश्न पूछे, तो जिस पक्ष का नाम पहले लेगा उसकी विजय होगी। परन्तु यदि निष्क्रिय स्वर की ओर से प्रश्न पूछता है, तो दूसरे नम्बर पर जिस पक्ष का नाम लेता है उसकी विजय होगी।

261– जब कोई सैनिक सक्रिय स्वर की दिशा में युद्ध के लिए प्रस्थान करे, तो उसका शत्रु संकटापन्न होगा। पर यदि निष्क्रिय स्वर की दिशा में युद्ध के लिए जाता है, तो शत्रु से उसका सामना होने की संभावना होगी। यदि

युद्ध में शत्रु को निष्क्रिय स्वर की ओर रखकर वह युद्ध करता है, तो शत्रु की मृत्य अवश्यम्भावी है।

262– यदि प्रश्नकर्त्ता स्वरयोगी से उसके चन्द्र स्वर के प्रवाहकाल में बायीं ओर या सामने से प्रश्न करता है और उसके नाम में अक्षरों की संख्या सम हो, तो समझना चाहिए कि कार्य में सफलता मिलेगी। यदि वह दक्षिण की ओर से प्रश्न करता है और उसके नाम में वर्णों की संख्या विषम हो, तो भी सफलता की ही सम्भावना समझना चाहिए।

263 – यदि प्रश्न पूछते समय चन्द्र स्वर प्रवाहित हो, तो संधि की सम्भावना समझनी चाहिए। लेकिन यदि उस समय सूर्य स्वर चल रहा हो, तो समझना चाहिए कि युद्ध के चलते रहने की सम्भावना है।

264– चन्द्र स्वर या सूर्य स्वर प्रवाहित हो, लेकिन यदि प्रश्न के समय सक्रिय स्वर में पृथ्वी तत्व- प्रवाहित हो, समझना चाहिए कि युद्ध कर रहे दोनों पक्ष बराबरी पर रहेंगे। जल तत्व- के प्रवाह काल मेंे जिसकी ओर से प्रश्न पूछा गया है उसे सफलता मिलेगी। प्रश्न काल में स्वर में अग्नि तत्व- के प्रवाहित होने पर चोट लगने की सम्भावना व्यक्त की जा सकती है। किन्तु यदि वायु या आकाश तत्व- प्रवाहित हो, तो पूछे गए प्रश्न का उत्तर मृत्यु समझना चाहिए।

NOTE;-

इन श्लोकोें में भी कुछ पिछले अंकों की भाँति ही नीचे के प्रथम दो श्लोकों में प्रश्न का उत्तर जानने की युक्ति बतायी गयी है। शेष तीन श्लोकों में कार्य में सफलता प्राप्त करने के कुछ तरीके बताए गए हैं।

265-266– यदि किन्हीं कारणों से प्रश्न पूछने के समय यदि स्वर-योगी सक्रिय स्वर का निर्णय न कर पाये, तो सही उत्तर देने के लिए वह निश्चल हो बैठ जाय और ऊपर की ओर एक फूल उछाले। यदि फूल प्रश्नकर्त्ता के पास उसके सामने गिरे, तो शुभ होता है। पर यदि फूल प्रश्नकर्त्ता के दूर गिरे या उसके पीछे जाकर गिरे, तो अशुभ समझना चाहिए।

267 – खड़े होकर अथवा बैठकर अपने प्राण (श्वास) को एकाग्र चित्त होकर अन्दर खींचते हुए यदि कोई व्यक्ति जो कार्य करता है उसमें उसे अवश्य सफलता मिलती है।

268–यदि कोई व्यक्ति सुषुम्ना के प्रवाहकाल में ध्यानमग्न हो, तो न कोई शस्त्र, न कोई समर्थ शत्रु और न ही कोई सर्प उसे मार सकता है।

269– यदि कोई व्यक्ति सक्रिय स्वर से श्वास अन्दर ले और अन्दर लेते हुए कोई कार्य प्रारम्भ करे तथा जूआ खेलने बैठे और सक्रिय स्वर से लम्बी साँस ले, तो वह सफल होता है।

270– जब एक करोड़ बल निष्फल हो जाते हैं, तब भी स्वरज्ञानी बलशाली बना सबसे अग्रणी होता है, अर्थात् भले ही एक करोड़ (हर प्रकार के) बल निष्फल हो जायँ, लेकिन स्वरज्ञानी का बल कभी निष्फल नहीं होता। स्वरज्ञानी इस लोक में और परलोक या अन्य किसी भी लोक में सदा शक्तिशाली होता है।

271– एक मनुष्य के पास दस, सौ, दस हजार, एक लाख अथवा एक राजा के बराबर बल होता है। सौ यज्ञ करनेवाले इन्द्र का बल करोड़ गुना होता है। एक स्वरयोगी का बल इन्द्र के बल के तुल्य होता है।
272– इसके बाद माता पार्वती ने भगवान शिव से पूछा कि हे प्रभो, आपने यह तो बता दिया कि मनुष्यों के पारस्परिक युद्ध में एक योद्ध की विजय कैसे होती है। लेकिन यदि यम के साथ युद्ध हो, मनुष्यों की विजय कैसे होगी?
273-274–यह सुनकर भगवान शिव बोले- हे देवि, जो व्यक्ति एकाग्रचित्त होकर तीनों नाड़ियों के संगम स्थल आज्ञा चक्र पर ध्यान करता है, उसे सभी अभीष्ट सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं, महालाभ होता है (अर्थात् ईश्वरत्व की प्राप्ति होती है) और सर्वत्र सफलता मिलती है।
275-यह सम्पूर्ण दृश्य साकार जगत निराकार सत्ता से उत्पन्न है। जो व्यक्ति साकार जगत से ऊपर उठ जाता है, अर्थात् भौतिक चेतना से ऊपर उठकर सार्वभौमिक चेतना को प्राप्त कर लेता है, तभी उसे पूर्णत्व प्राप्त हो जाता है।

....
,,

वशीकरण के तरीके;-(275 से- 285 तक)

....
,,,

श्लोक संख्या 286 से 300 तक गर्भाधान के तरीके;-

286–रजस्वला होने के पाँचवें दिन यदि स्त्री का चन्द्र स्वर प्रवाहित हो और पुरुष का सूर्य स्वर प्राहित हो, तो समागम करने से पुत्र उत्पन्न होता है।

287 – स्त्री गाय के दूध के साथ शंखवल्ली (एक प्रकार की बूटी) का सेवन कर प्रवाहित स्वर में पृथ्वी तत्व या जल तत्व का प्रवाह होने पर अपने पति से तीन बार पुत्र के लिए प्रार्थना करनी चाहिए।

288 – ऋतुस्नान के समय यदि स्त्री उपर्युक्त पेय का सेवन करे और रजो-समाप्ति के दिन (रजस्वला होने के पाँचवे दिन) पति के साथ समागम करने पर गर्भधारण होता है तथा वह नरसिंह के समान पुत्र को जन्म देती है।

289 – ऋतु-स्नान के पाँचवे दिन यदि स्त्री का सुषुम्ना स्वर का प्रवाह हो और पुरुष के सूर्य स्वर का प्रवाह हो, ऐसे समय में किए गए समागम के परिणाम स्वरूप गर्भाधान से अंगहीन और कुरूप पुत्र उत्पन्न होता है।

290 – ऋतु-स्नान के बाद विषम तिथियों को दिन अथवा रात्रि में जब पुरुष का सूर्य स्वर और स्त्री का चन्द्र स्वर प्रवाहित हो, दोनों का समागम होने पर बन्ध्या स्त्री को भी पुत्र की प्राप्ति होती है।

291– ऋतु के आरम्भ में स्त्री का चन्द्र स्वर प्रवाहित हो और पुरुष का सूर्य स्वर प्रवाहित हो, ऐसे समय में सहवास करने से बन्ध्या स्त्री को भी पुत्र पैदा होता है।

292 – ऋतु के आरम्भ में सहवास के समय पुरुष का सूर्य स्वर प्रवाहित हो रहा हो और स्खलन के समय अचानक चन्द्र स्वर प्रारम्भ हो जाय, तो गर्भ-धारण नहीं हो सकता।

293– यदि गर्भ के सम्बन्ध में कोई प्रश्न करे और स्वर-योगी (उत्तर देनेवाले) का उस समय यदि चन्द्र स्वर प्रवाहित हो, तो गर्भस्थ संतान कन्या और यदि सूर्य-स्वर प्रवाहित हो, तो पुत्र होता है। किन्तु यदि सुषुम्ना प्रवाहित हो, तो गर्भपात समझना चाहिए।

294– यदि प्रश्न के समय स्वर में पृथ्वी या वायु तत्व प्रवाहित हो, तो गर्भस्थ संतान कन्या, जल तत्व प्रवाहित हो, तो पुत्र, अग्नि तत्व का प्रवाहकाल होने पर गर्भपात और आकाश तत्व का प्रवाह-काल होने पर नपुंसक संतान उत्पन्न होने का योग समझा जाय।

295– प्रश्न काल में चन्द्र स्वर का प्रवाह हो तो लड़की होने की, सूर्य स्वर का प्रवाह हो तो लड़का होने की और यदि सुषुम्ना स्वर प्रवाहित हो तो नपुंसक संतान की उत्पत्ति समझनी चाहिए। उस समय यदि प्रश्नकर्त्ता का स्वर पूर्ण रूप से प्रवाहित हो तो पुत्र पैदा होने की भविष्यवाणी करनी चाहिए।

296– हे सुन्दरि, यदि शून्य स्वर के प्रवाह-काल में गर्भाधान नहीं होता, पर दोनों स्वर संतुलित रूप से प्रवाहित हो रहे हों, तो जुड़वाँ संतान होती है। लेकिन स्वर का संक्रमण काल होने पर गर्भाधान होता तो है, पर उसका पतन हो जाता है, ऐसा तत्ववादियों की मान्यता है।

297 – वायुतत्व के प्रवाहकाल में हुए गर्भाधान के परिणाम स्वरूप उत्पन्न संतान दीन-हीन और अभागी होती है, जल तत्व के प्रवाहकाल में गर्भाधान से उत्पन्न संतान सुखी और गौरवशाली होती है, अग्नि तत्व में गर्भाधान ठहरता नहीं, यदि ठहर गया तो इस प्रकार उत्पन्न संतान अल्पायु होती है, पर पृथ्वी तत्व के प्रवाहकाल में हुए गर्भाधान के परिणाम स्वरूप उत्पन्न संतान धन-धान्य से युक्त आनन्द का उपभोग करनेवाली होती है।

298 – जल तत्व के प्रवाहकाल में गर्भाधान से उत्पन्न संतान धन-धान्य और ऐश्वर्य से सम्पन्न होती है। परन्तु आकाश तत्व के प्रवाहकाल का गर्भाधान नहीं ठहरता।

299 – पृथ्वी तत्व- के प्रवाहकाल के गर्भ से सुपुत्र उत्पन्न होता है और जल तत्व- के प्रवाहकालिक गर्भ से कन्या का जन्म होता है। जबकि अन्य तीन तत्वों - के प्रवाहकाल में गर्भ नहीं ठहरता और यदि ठहर गया, तो उससे उत्पन्न संतान अल्पायु होती है।

300– सूर्य स्वर के मध्य में चन्द्र स्वर उदय हो अथवा चन्द्र स्वर के मध्य में सूर्य स्वर उदय हो, तो ऐसे समय में तुरन्त गुरु से मिलकर मार्ग-दर्शन लेना चाहिए। क्योंकि ऐसे समय में करोड़ों वेद, शास्त्र आदि ग्रंथ भी किसी काम के नहीं होते।

CONTD..

....SHIVOHAM...

क्या है प्राचीन ,दुर्लभ एवं गुहय स्वरोदय विज्ञान?(301-395)

301 – चैत्र माह के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा तिथि को विद्वान लोग प्रातःकाल उठकर तत्व- -विचार करते हुए और सूर्य के दक्षिणायन तथा उत्तरायण को ध्यान में रखते हुए वर्षफल से सम्बन्धित प्रश्नों का उत्तर दें।

302 -303 – उस समय यदि चन्द्र स्वर का प्रवाह हो तथा उसमें पृथ्वी, जल या वायु तत्व सक्रिय हो, तो आनेवाला वर्ष सम्पन्नता और प्रचुर उपज से भरा होगा। लेकिन उस समय चन्द्र-स्वर में अग्नि अथवा आकाश तत्व की प्रधानता हो, तो समझना चाहिए कि आनेवाले वर्ष में, महीने मे एवं दिनों में अकाल पड़ेगा, बाढ़ से नुकसान होगा एवं दुख की अधिकता रहेगी।

304– लेकिन उस समय सुषुम्ना नाड़ी सक्रिय होना सभी कार्यों में क्रूरता तथा भयावह परिस्थियों के आगम का संकेत है, अर्थात् देश का विभाजन, महामारी, कष्ट, पीड़ा, अभाव आदि की बहुलता देखने को मिलेगी।

305– मेष संक्रान्ति के समय (जब सूर्य मीन राशि से मेष राशि में संक्रमण करता है) तत्व- चिन्तक को अपने

प्रवाहित स्वर पर विचार करे और उसके अनुसार लोगों के लिए वर्ष-फल बताए।

306– स्वर में पृथ्वी आदि तत्वों की प्रधानता के आधार पर किसी दिन, मास और वर्ष का फल समझना चाहिए। यदि पृथ्वी या जल तत्व की प्रधानता हो, तो सुख-समृद्धि का संकेत समझना चाहिए। लेकिन वायु, अग्नि अथवा आकाश तत्वों की प्रधानता होने पर इसके बिलकुल विपरीत समझना चाहिए।

307– वर्ष के प्रथम दिन प्रातःकाल स्वर में पृथ्वी) तत्व- के सक्रिय होने पर समझना चाहिए कि आनेवाले वर्ष में सुभिक्ष रहेगा, पर्याप्त वर्षा होगी, प्रचुर अनाज पैदा होगा, हर प्रकार का सुख मिलेगा और राष्ट्र की हर तरह से वृद्धि होगी।

SPECIAL NOTE;-

यहाँ यह याद दिलाना आवश्यक है कि भारतीय उपमहाद्वीप में सभी राज्यों में, कुछ राज्यों को छोड़कर, वर्ष का प्रारम्भ चैत्र माह के शुक्लपक्ष के प्रथम दिन से प्रारम्भ होता है। इसे पूरे देश में भिन्न-भिन्न नामों से जानते हैं- वर्ष-प्रतिपदा, गुडीपरवा, उगादि आदि। यह भी याद रखना आवश्यक है कि शुक्लपक्ष में प्रथम तीन दिनतक प्रातःकाल चन्द्रस्वर प्रवाहित होता है। इसलिए इस दिन प्रातःकाल सूर्योदय के समय या अन्य प्रान्तों में जहाँ नववर्ष जिस दिन प्रारम्भ होता है, उस दिन कौन सा पक्ष, कौन सी तिथि है और उसके अनुसार कौन सा स्वर चलना चाहिए, इसका निर्णयकर अपने स्वर की परीक्षा करके स्वर में उदित तत्त्व के अनुसार वर्षफल का कथन करना चाहिए। सूर्य का मेषराशि में प्रवेश-काल को भी कहीं-कहीं वर्ष का प्रारम्भ माना जाता है। अतः उसके अनुसार वर्षफल समझने की विधि भी बताई गयी है।

308– यदि स्वर (चन्द्र स्वर) में जल तत्व प्रवाहित हो, तो अच्छी वर्षा, अच्छी फसल, सुख-समृद्धि और शान्ति के संकेत समझना चाहिए।

309– यदि अग्नितत्व प्रवाहित हो, तो दुर्भिक्ष, युद्ध, बहुत मामूली वर्षा आदि की सम्भावना समझनी चाहिए।

310 – मेष संक्रान्ति के समय यदि स्वर में वायु तत्व के प्रवाहित होनेपर अनेक प्रकार के उत्पात, उपद्रव, भय, अल्प वृष्टि आदि की आशंका समझनी चाहिए।

(यहाँ से मेष संक्रान्ति के समय स्वर और उसमें सक्रिय तत्व के अनुसार वर्षफल कथन का विधान किया गया है।)

311– मेष संक्रान्ति के समय यदि स्वर में आकाश तत्व प्रवाहित हो, तो सुख-सम्पन्नता का सर्वथा अभाव समझना चाहिए।

312– स्वर का पूर्ण रूप से प्रवाह और उसमें उचित तत्व की उपस्थिति सुख-सम्पन्नता के द्योतक हैं। जब सूर्य-स्वर और चन्द्र स्वर बारी-बारी से प्रवाहित हों, तो उत्तम फसल का संकेत समझना चाहिए।

313– यदि सूर्य स्वर में अग्नि तत्व या केवल आकाश तत्व प्रवाहित हो, तो वस्तुओं के मूल्य में बढ़ोत्तरी की आशंका होती है और इसलिए समय से अनाज आदि की व्यवस्था कर लेनी चाहिए।

314 – यदि मेष संक्रान्ति रात में होती है तथा उसके अगले प्रातःकाल में सूर्य स्वर में अग्नि तत्व , वायु तत्व अथवा आकाश तत्व का प्रवाह हो, तो संसार में रौरव नरक के समान दुख के आने की आशंका रहती है।

315 – रोग सम्बन्धी प्रश्न के समय स्वर में पृथ्वी तत्व तत्त्व प्रवाहित होने पर रोग का कारण प्रारब्ध होता है, जल तत्व प्रवाहित होने पर त्रिदोष (वात, पित्त व कफ) और अग्नि तत्व प्रवाहित होने पर शाकिनी या पितृदोष होता है।

316 – प्रश्नकर्त्ता यदि अप्रवाहित स्वर की ओर से आकर प्रवाहित स्वर की ओर बैठ जाय और किसी रोग के सम्बन्ध में प्रश्न करे, तो अन्तिम साँस गिनता हुआ मूर्च्छित रोगी भी रोगी भी ठीक हो जाएगा।

317 – प्रश्नकर्त्ता सक्रिय स्वर की ओर से किसी रोग के विषय में प्रश्न करे, तो रोग किसी भी स्टेज पर क्यों न हो ठीक हो जाएगा।

318 –दूत (रोगी का सम्बन्धी प्रश्नकर्त्ता) हड़बड़ाहट में बड़बड़ाता हुआ आए और रोग के सम्बन्ध में प्रश्न करे तथा उस समय सूर्य स्वर प्रवाहित हो रहा हो, तो समझना चाहिए कि रोगी स्वस्थ हो जाएगा। परन्तु यदि उस समय चन्द्र स्वर प्रवाहित हो, तो समझना चाहिए कि रोगी बीमारी में होगा।

319– जिस व्यक्ति का स्वर नियंत्रण में हो या उसका मन एकाग्रचित्त हो और वह सक्रिय स्वर की ओर से अपने जीवन के विषय में प्रश्न पूछे, तो उसका उत्तर शुभ फल देनेवाला समझना चाहिए।

320 – बाईं अथवा दाहिनी नाक से साँस लेते समय यदि कोई किसी के रोगी के सम्बन्ध में प्रश्न करे, तो समझना चाहिए कि बिना किसी सन्देह के रोगी स्वस्थ हो जाएगा।

321 – यदि प्रश्न के समय स्वर की गति नीचे की ओर हो, अर्थात् स्वर में जल तत्त्व के प्रवाह काल में (जलतत्व के प्रवाह के समय स्वर की गति नीचे की ओर होती है) प्रश्न पूछा गया हो, तो समझना चाहिए कि रोगी स्वस्थ हो जाएगा। लेकिन रोगी के स्वास्थ्य के विषय में प्रश्न के समय यदि स्वर की गति ऊर्ध्व (ऊपर की ओर) हो, अर्थात् स्वर में अग्नि तत्व सक्रिय हो, तो समझना चाहिए कि रोगी की मृत्यु निश्चित है।

322 – प्रश्न पूछनेवाला खाली स्वर की दिशा में हो तथा उसकी बात समझ में न आए और यदि विषम स्वर प्रवाहित होने लगे, तो किए गए प्रश्न का उत्तर उल्टा समझना चाहिए।

323 – प्रश्न करनेवाला यदि दाहिनी ओर हो और उत्तर देनेवाले का चन्द्र स्वर सक्रिय हो, समझना चाहिए कि सैकड़ों चिकित्सकों से घिरा होनेपर भी रोगी के प्राण नहीं बच सकते। कुछ विद्वान इसका अर्थ इस प्रकार करते हैं- उत्तर देनेवाले का चन्द्र स्वर और प्रश्नकर्त्ता का सूर्य स्वर प्रवाहित हो रहा हो, तो सैकड़ों चिकित्सकों से घिरा होनेपर भी रोगी की मृत्यु निश्चित है।

324 – यदि प्रश्न के समय उत्तर देनेवाले का दाहिना स्वर चल रहा हो और प्रश्न पूछनेवाला (दूत) बायीं ओर खड़ा हो, समझना चाहिए कि उस रोगी को भगवान भी नहीं बचा सकता।

325 – इस श्लोक में तत्वों के क्रम में परिवर्तन होने पर अपने तथा सम्बन्धियों के स्वास्थ्य के विषय में संकेत किया गया है। अर्थात् जब एक ही तत्व का विपरीत क्रम में प्रवाह हो, तो वह रोग द्वारा होनेवाले कष्ट का संकेत है। लेकिन यदि दो तत्व विपरीत क्रम में प्रवाहित हों, तो वे सगे-सम्बन्धियों और मित्रों के लिए विपत्ति के संकेत हैं। परन्तु यदि एक ही तत्व एक माह तक निरन्तर प्रवाहित हो, तो मृत्यु का संकेत है।

326 – सुधी लोगों को क्रम से प्रत्येक माह, पक्ष, दिन के प्रारंभ में (सूर्योदय के समय) और मृत्यु के समय तत्व की परीक्षा करनी चाहिए। इसे समय-ज्ञान कहा गया है।

327 – इस भौतिक शरीर की रचना पंचमहाभूतों से होती है और वह शिवरूपी प्राण से सिंचित होता है। सूर्य-नाड़ी में प्राण का प्रवाह जीव की मृत्यु से रक्षा करता है, अर्थात् शक्ति प्रदान करता है। इसीलिए प्राण को इस पंचभूतात्मक शरीर मेः दीप कहा गया है।

328 – यदि सूर्यनाड़ी में प्राण को रोकने का अभ्यास किया जाय, तो पिंगला नाड़ी शक्तिशाली होती है और व्यक्ति को लम्बी आयु प्राप्त होती है।

329 – इस कर्मयोग के सदा अभ्यास करके शरीर में स्थित सहस्रार चक्र को विकसित करना चाहिए। क्योंकि इससे अमृत का स्राव होता है, जो व्यक्ति को अमर बना देता है।

330– जो व्यक्ति रात में चन्द्रनाड़ी के प्रवाह को और दिन में सूर्यनाड़ी के प्रवाह को नियमित रूप से रोकता है, वह निस्संदेह योगी होता है।

331– यदि किसी का एक ही स्वर दिन-रात लगातार प्रवाहित होता रहे, तो समझ जाना चाहिए कि तीन वर्ष में उसकी मृत्यु होगी।

332– यदि किसी की पिंगला नाड़ी (दाहिना स्वर) पूरी तरह दिन-रात लगातार प्रवाहित हो तो समझना चाहिए कि उसके जीवन के केवल दो वर्ष बचे हैं।

333 – मनीषियों का मत है कि यदि किसी की एक ही नाड़ी से लगातार तीन रातों तक साँस चले तो समझना चाहिए कि उसका जीवन केवल एक वर्ष शेष रह गया है।

334 – यदि किसी व्यक्ति का बाँया स्वर रात में तथा दाहिना स्वर दिन में लगातार प्रवाहित हो रहा हो, तो समझना चाहिए कि उसके जीवन के मात्र छः माह शेष बचे हैं।

335 – जल में सूर्य का प्रतिबिम्ब यदि किसी ओर से किसी को कटा-फटा दिखे, तो समझना चाहिए कि उसकी मृत्यु एक से छः माह के अन्दर होगी। यदि सूर्य के प्रतिबिम्ब के बीच में छिद्र दिखे, तो समझना चाहिए कि उसकी जिन्दगी मात्र दस दिन की है और यदि प्रतिबिम्ब धूमिल दिखायी दे, तो उसी दिन उसकी मृत्यु निश्चित है, ऐसा सर्वज्ञ समय-ज्ञानी ऋषियों का विचार है।

336– यदि दूत (प्रश्न करने वाला) लाल, कषाय (नारंगी) अथवा काले रंग के वस्त्र धारण किए हुए हो, दाँत टूटे

हों, सिर का मुंडन कराये हो, शरीर में तेल पोते हुए हो अथवा उसके हाथ में रस्सी, राख, आग, नरमुंड, चिमटा हो तथा सूर्यास्त के समय खाली स्वर की दिशा से वह आए और उसी दिशा में बैठ जाय, तो समझना चाहिए कि वह साक्षात् यम है।

337 – किसी रोगी में अचानक मनोविकार उत्पन्न हो जाए तथा थोड़ी ही देर में सुधार के लक्षण दिखने लगे और फिर अचानक प्रलाप करने लगे, तो इसे सन्निपात का लक्षण समझना चाहिए।

338 – उक्त अवस्था में उस व्यक्ति का शरीर शीतल होने लगे तथा उसकी अवस्था खराब होने लगे, तो उसका अनिष्ट समझना चाहिए। उसे मैं विस्तार पूर्वक बताता हूँ।

339 – यदि कोई व्यक्ति अपशब्द कहे और तुरन्त थोड़ी देर में अपने अपशब्द पर पश्चात्ताप करने लगे, तो निस्संदेह उसकी अचानक मृत्यु हो जाती है।

340 – जिस व्यक्ति की अन्दर जानेवाली श्वास शीतल हो और छोड़ी जानेवाली आग की भाँति गरम हो, उसे मृत्यु से बड़ा से बड़ा चिकित्सक भी नहीं बचा सकता।

341 - जो व्यक्ति अपनी जीभ, आकाश, ध्रुवतारा, मातृमंडल, अरुन्धती, चन्द्रमा अथवा शुक्र तारा प्रयास करके भी न देख पाए, तो एक वर्ष के अन्दर उसकी मृत्यु निश्चित है।

342 – यदि किसी व्यक्ति को सूर्य, चन्द्रमा अथवा अग्नि के प्रकाश न दिखाई दे, तो समझना चाहिए कि उसका जीवन ग्यारह माह से अधिक नहीं है।

343 – यदि किसी व्यक्ति को जाग्रत अवस्था अथवा स्वप्न में बावड़ी या कुएँ में सोना, चाँदी, मूत्र या विष्ठा दिखाई दे, तो उसकी आयु दस माह से अधिक नहीं समझनी चाहिए।

344 – यदि किसी को सोने अथवा काले रंग का दीपक दिखाई दे और वस्तुएँ अपने वास्तविक रूप में न दिखकर विकृत रूप में दिखाई पड़ें, तो समझना चाहिए कि उसका जीवन नौ माह से अधिक नहीं है।

345 – यदि किसी को मोटा व्यक्ति दुबला, दुबला मोटा, श्याम वर्ण का गौर, गौर वर्ण का श्याम, सज्जन व्यक्ति दुर्जन, वीर व्यक्ति कायर, शान्त व्यक्ति विकार से भरा दिखे, तो समझना चाहिए कि उसकी आयु केवल आठ माह शेष है।

346 – जब किसी आदमी की हथेली अथवा जीभ के मूल में दर्द हो, उसके खून का रंग काला हो जाय एवं सूई चुभाने पर भी दर्द का अनुभव न हो, तो समझना चाहिए वह सात महीने तक जीवित रहेगा।

347 – जब बिना बीमारी के किसी आदमी की बीच की तीन उँगलियाँ न मुड़ें, गला सूखे तथा किसी विषय पर लगातार बोलने पर भी उसे याद न रहे, तो उसकी छः महीने में मृत्यु होती है।

348 – जब याददास्त के नष्ट होने और छाती (nipple) के चमड़े पर किसी प्रकार की अनुभूति न होने के लक्षण दिखाई दें, तो समझना चाहिए कि उस आदमी की मृत्यु पाँचवें महीने में होने की सम्भावना है।

349 – जब किसी आदमी को दिखाई न दे और उसकी आँखों में दर्द हो, तो उसकी मृत्यु चौथे महीने में निश्चित है।

350 – जब किसी आदमी के दाँत सुन्न हो जाएँ और अण्डकोषों को दबाने पर दर्द का अनुभव न हो, तो तीसरे महीने में उसकी मृत्यु अवश्य होती है।

SPECIAL NOTE;-

इन श्लोकों मेः बहुत ही प्रभावी छायोपासना की विधि बताई गयी है। यह साधना प्रातःकाल या सायंकाल सूर्य की उपस्थिति में करनी चाहिए। साधकों से अनुरोध है कि किसी सक्षम गुरु-सान्निध्य के बिना स्वयं इसका अभ्यास न करें। इस साधना के परिणाम स्वरूप कुछ ऐसी अनुभूतियाँ हो सकती हैं, जो मानसिक संतुलन को अव्यवस्थित कर सकती हैं। जो सक्षम गुरु होता है, वह इस साधना के पहले की तैयारी करवाता है। इस साधना का अभ्यास करने के पहले साधक का भयमुक्त होना आवश्यक है।

छाया उपासना;-

351– हे देवि, अब मैं तुम्हें शैवागम (आगम अर्थात् तंत्र) में बतायी गयी छाया उपासना की विधि संक्षेप में बताता हूँ, जिससे मनुष्य त्रिकालज्ञ हो जाता है।

352 – एकान्त निर्जन स्थान में जाकर और सूर्य की ओर पीठ करके खड़ा हो जाए या बैठ जाए। फिर अपनी छाया के कंठ भाग को देखे और उस पर मन को थोड़ी देर तक केन्द्रित करे।

353 – इसके बाद आकाश की ओर देखते हुए ''ह्रीं परब्रह्मणे नमः'' मंत्र का 108 बार जप करना चाहिए अथवा तबतक जप करना चाहिए, जबतक आकाश में भगवान शिव की आकृति न दिखने लगे।

354– छः मास तक इस प्रकार अपनी छाया की उपासना करने पर साधक को शुद्ध स्फटिक की भाँति आलोक युक्त भगवान शिव की आकृति का दर्शन होता है। इसके बाद साधक समस्त प्राणी जगत का स्वामी हो जाता है और यदि वह दो वर्षों तक इस प्रकार साधना करता है, तो वह साक्षात् शिव हो जाता है।

355 – इसका नियमित अभ्यास करने से मनुष्य त्रिकालज्ञ हो जाता है और परमानन्द मंक अवस्थित होता है। इसका निरन्तर अभ्यास करनेवाले योगी के लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं होता।

356– यदि वह रूप (भगवान शिव की आकृति) कृष्ण वर्ण का दिखाई पड़े, तो साधक को समझना चाहिए कि आने वाले छः माह में उसकी मृत्यु सुनिश्चित है।

357 – यदि वह आकृति पीले रंग की दिखाई पड़े, तो साधक को समझ लेनः T चाहिए कि वह निकट भविष्य में बीमार होनेवाला है। लाल रंग की आकृति दिखने पर भयग्रस्तता, नीले रंग की दिखने पर उसे हानि, दुख तथा अभावग्रस्त होने का सामना करना पड़ता है। लेकिन यदि आकृति बहुरंगी दिखाई पड़े, तो साधक पूर्णरूपेण सिद्ध हो जाता है।

358– यदि चरण, टाँग, पेट और बाहें न दिखाई दें, तो साधक को समझना चाहिए कि निकट भविष्य में उसकी

मृत्यु निश्चित है।

359– यदि छाया में बायीं भुजा न दिखे, तो पत्नी और दाहिनी भुजा न दिखे, तो भाई या किसी घनिष्ट मित्र अथवा समबन्धी एवं स्वयं की मृत्यु निकट भविष्य में निश्चित है।

360– यदि छाया का सिर न दिखाई पड़े, तो एक माह में, जंघे और कंधा न दिखाई पड़ें तो आठ दिन में और छाया न दिखाई पड़े, तो तुरन्त मृत्यु निश्चित है।

361 – सबेरे सूर्योदय के बाद सूर्य की ओर पीठ करके खड़ा होना चाहिए और अपनी छाया पर मन को केन्द्रित करना चाहिए। यदि छाया की उँगलियाँ न दिखाई पड़े, तो तुरन्त मृत्यु समझना चाहिए। यदि पूरी छाया न दिखाई पड़े, तो भी तत्काल मृत्यु समझनी चाहिए। कान, सिर, चेहरा, हाथ, पीठ या छाती का भाग न दिखाई पड़े, तो भी समझना चाहिए कि मृत्यु एकदम सन्निकट है। लेकिन यदि छाया का सिर न दिखे और दिग्भ्रम हो, तो उस व्यक्ति का जीवन केवल छः माह समझना चाहिए।

362– किसी व्यक्ति का दाहिना स्वर लगातार सोलह दिन तक चलता रहे, तो उसका जीवन महीने के बचे शेष दिनों तक, अर्थात् केवल 14 दिन समझना चाहिए।

363– कालज्ञान रखनेवाले योगियों का मत है कि यदि दाहिना स्वर लगातार चले तथा बाँया स्वर बिलकुल न चले, तो समझना चाहिए कि उस व्यक्ति की मृत्यु पन्द्रह दिन में हो जाएगी।

364 – शौच के समय यदि किसी व्यक्ति का मल, मूत्र और अपान वायु एक साथ निकले, तो समझना चहिए कि उसकी मृत्यु दस दिन में होगी। 365– कालज्ञानियों का मत है कि यदि किसी व्यक्ति का बाँया स्वर लगातार चले और दाहिना स्वर बिलकुल न चले, तो समझना चाहिए कि उसकी मृत्यु एक माह में होगी।

366– जिस व्यक्ति की आयु समाप्त हो गयी है उसे अरुन्धती, ध्रुव, विष्णु के तीन चरण और मातृमंडल नहीं दिखायी पड़ते।

367– उपर्युक्त श्लोक में कथित चारों चीजों का विवरण इस श्लोक में दिया गया - जिह्वा को अरुन्धती, नाक के अग्र भाग को ध्रुव, दोनों भौहें और उनके मध्य भाग को विष्णु के तीन चरण तथा आँखों के तारों को मातृमंडल कहते हैं।

368– ऐसा कहा जाता है कि जिस व्यक्ति को अपनी भौहें न दिखें, उसकी मृत्यु नौ दिन में, सामान्य ध्वनि कानों से न सुनाई पड़े तो सात दिन में, आँखों का तारा न दिखे तो पाँच दिन में, नासिका का अग्रभाग न दिखे तो तीन दिन में और जिह्वा न दिखे तो एक दिन में मृत्यु होगी।

369 – अपनी आँखों के कोनों को दबाने पर चमकते तेज विन्दु यदि न दिखें, तो समझना चाहिए कि उस व्यक्ति की मृत्यु दस दिन में होगी। 370– तीर्थ में स्नान करने, दान देने, तपस्या, सत्कर्म करने, जप, योग और ध्यान करने से व्यक्ति की आयु लम्बी होती है।

371– धातु और मल-मूत्र के दोष शरीर का नाश कर देते हैं। प्राण वायु के संतुलन से इन दोषों में कमी आती है, जिससे शारीरिक शक्ति और तेज बढ़ते हैं।

372– अतएव धर्म आदि के साधनरूप इस शरीर की रक्षा करनी चाहिए। योगाभ्यास के लिए शरीर को नियमित रूप से तैयार करना चाहिए। क्योंकि असाध्य रोग जीवन को नष्ट कर देते हैं और योगाभ्यास के अतिरिक्त इन असाध्य रोगों का दूसरा कोई उपचार भी नहीं है।

373 – जिन मनुष्यों के हृदय में इस शाश्वत् अद्वितीय रहस्य (स्वरोदय विज्ञान) का स्फुरण होता है, उसपर महादेव भागवान शिव की कृपा होती है। इससे उसका शरीर चन्द्रमा की तरह आलोकित हो जाता है और स्वप्न में भी उसे मृत्यु का भय नहीं होता।

374– इडा नाड़ी को गंगा, पिंगला को यमुना और इनके मध्य में स्थित सुषुम्ना नाड़ी को सरस्वती के नाम से जाना जाता है। जहाँ इन तीनों नाड़ियों का मिलन होता है उसे प्रयाग (भ्रूमध्य) कहते हैं।

375– शीघ्र सिद्धि देनेवाली साधना की प्रक्रिया बताते हैं - सबसे पहले योगी को पद्मासन में बैठकर उड्डियान बन्ध लगाना चाहिए।

SPECIAL NOTE;-

निम्नलिखित श्लोकों में प्राणायाम की प्रक्रिया और उससे होनेवाले लाभ की चर्चा की गयी है। पर, साधकों से अनुरोध है कि वे प्राणायाम किसी सक्षम व्यक्ति से सीखकर ही अभ्यास करें, विशेषकर जिनमें कुम्भक प्राणायाम को सम्मिलित करना हो। प्राणायाम की अनगिनत प्रक्रियाएँ हैं और उनके प्रयोजन भी भिन्न हैं। कुम्भक युक्त प्राणायाम एक सक्षम साधक के सान्निध्य और मार्गदर्शन में ही करना चाहिए।

376– इस श्लोक में प्राणायाम के अंगों और उससे होनेवाले लाभ की ओर संकेत किया गया है। प्राणायाम में पूरक, कुम्भक और रेचक तीन क्रियाएँ होती हैं। योगी लोग इसे शरीर के विकारों को दूर करने के कारण के रूप में जानते हैं। अतएव इसका प्रतिदिन अभ्यास करना चाहिए। पूरक का अर्थ साँस को अपनी पूरी क्षमता के अनुसार अन्दर लेना है। रेचक का अर्थ है साँस को पूर्णरूपेण बाहर छोड़ना। तथा कुम्भक का अर्थ है पूरक करने के बाद साँस को यथाशक्ति अन्दर या रेचक क्रिया के बाद साँस को बाहर रोकना। इसीलिए यह (कुम्भक) दो प्रकार का होता है- अन्तः कुम्भक और बाह्य कुम्भक।

377– पूरक से शरीर की वृद्धि के लिए आवश्यक पोषण मिलता है और शरीर की रक्त, वीर्य आदि सप्त धातुओं में सन्तुलन आता है। कुम्भक से उचित प्राण-संचार होता है और जीवनी शक्ति में वृद्धि होती है।

378– रेचक करने से शरीर का पाप मिटता है, अर्थात् शरीर और मन के विकार दूर होते हैं। इसके अभ्यास से साधक योगपद प्राप्त करता है (अर्थात् योगी हो जाता है) और शरीर में सर्वांगीण सन्तुलन स्थापित होता है तथा साधक मृत्युजयी बनता है।

379– सुधी व्यक्ति को दाहिने नासिका रन्ध्र से साँस को अन्दर लेना चाहिए, फिर यथाशक्ति सहज ढंग से कुम्भक

करना चाहिए और इसके बाद साँस को बाँए नासिका रन्ध्र से छोड़ना चाहिए।

380 – जो लोग चन्द्र नाड़ी से साँस अन्दर लेकर सूर्य नाड़ी से रेचन करते हैं और फिर सूर्य नाड़ी से साँस अन्दर लेकर चन्द्र नाड़ी से उसका रेचन करते हैं, वे जब तक चन्द्रमा और तारे रहते हैं तब तक जीवित रहते हैं (अर्थात् दीर्घजीवी होते हैं)। यह अनुलोम-विलोम या नाड़ी-शोधक प्राणायाम की विधि है।

381– अपने शरीर में जो नाड़ी प्रवाहित हो रही हो, उससे साँस अन्दर भरकर और मुँह बन्दकर यथाशक्ति आन्तरिक कुम्भक करने से वृद्ध भी युवा हो जाता है।

382– मुख, नासिका, कान और आँखों को दोनों हाथों की उँगलियों से बन्दकर स्वर में सक्रिय तत्त्व के प्रति सचेत होने का अभ्यास करना चाहिए। इस अभ्यास को षण्मुखी मुद्रा कहते हैं। षण्मुखी मुद्रा के अभ्यास की पूरी विधि शिवस्वरोदय के 150वें श्लोक पर चर्चा के दौरान दी गयी थी।

;;

150 श्लोक ;-

1. सर्वप्रथम किसी भी ध्यानोपयोगी आसन में बैठें।

2. आँखें बन्द कर लें, काकीमुद्रा में मुँह से साँस लें, साँस लेते समय ऐसा अनुभव करें कि प्राण मूलाधार से आज्ञाचक्र की ओर ऊपर की ओर अग्रसर हो रहा है।

3. (थोड़ा सिर इस प्रकार झुकाना है कि ठोड़ी छाती को स्पर्श न करे) और चेतना को आज्ञाचक्र पर टिकाएँ। साँस को जितनी देर तक आराम से रोक सकते हैं, अन्दर रोकें। साथ ही जैसा श्लोक में आँख, नाक, कान आदि अंगुलियों से बन्द करने को कहा गया है, वैसा करें, खेचरी मुद्रा (जीभ को उल्टा करके तालु से लगाना) के साथ अर्ध जालन्धर बन्ध लगाएँ।

4. सिर को सीधा करें और नाक से सामान्य ढंग से साँस छोड़ें।

5. यह एक चक्र हुआ। ऐसे पाँच चक्र करने चाहिए। प्रत्येक चक्र के बाद कुछ क्षणों तक विश्राम करें, आँख बन्द रखें। अभ्यास के बाद थोड़ी देर तक शांत बैठें और चिदाकाश (आँख बन्द करने पर सामने दिखने वाला रिक्त स्थान) को देखें। इसमें दिखायी पड़ने वाले रंग से सक्रिय तत्व की पहिचान करते हैं, अर्थात् पीले रंग से पृथ्वी, सफेद रंग से जल, लाल रंग से अग्नि, नीले या भूरे रंग से वायु और बिल्कुल काले या विभिन्न रंगों के मिश्रण से आकाश तत्व समझना चाहिए।

;;;

383– जो योगी इस मुद्रा का प्रतिदिन अभ्यास करता है, वह तत्वों के आकार, गति, स्वाद, रंग और लक्षण को पहचानने में सक्षम हो जाता है। इससे उसके पास स्वस्थ और सफल सम्पर्क स्थापित करने की क्षमता आ जाती है।

384– आशा और कामनाओं से मुक्त योगी चिन्तारहित होकर संसार में रहते हुए भी उससे निर्लिप्त रहता है, जैसे

रंगमंच पर अभिनय कर रहा हो। इस प्रकार वह कालजयी हो जाता है।

385 – विश्व को जाननेवाली आद्या शक्ति योगी को अपने नेत्रों से दिखाई देती है। अतएव योगी को अपने मन को उसी में स्थिर करना चाहिए।

386– इसके पूर्व प्राणायाम आदि के बताए साधनों का अभ्यास करनेवाले साधक की आयु तीन घटी रोज बढ़ती है। इस परम गुह्य (गोपनीय) ज्ञान का उपदेश भगवान शिव ने माँ पार्वती को सिद्ध के गुणों के उद्गम स्थल (गुण-गह्वर) में दिया।

387– योगी पद्मासन में बैठकर मूलबंध लगाकर अपान वायु को रोकता है और प्राणवायु को रोककर उसे सुषुम्ना नाड़ी के माध्यम से ब्रह्मरंध्र तक और फिर वहाँ से उसे आकाश (सहस्रार चक्र) में ले जाता है। जो योगी ऐसा करने में सफल होते हैं, वे ही धन्य हैं।

388– जो योगी इस ज्ञान को जानता है और प्रतिदिन इस ग्रंथ का पाठ करता है, वह सभी दुखों से मुक्त होता है तथा अन्त में उसकी सारी मनोकामनाएँ पूरी होती है।

389– जो स्वरज्ञान का नित्य अभ्यास कर इसे अपना बना लेता है, लक्ष्मी उसके चरणों में होती है। वह जहाँ कहीं भी रहता है, सभी शारीरिक सुख सदा उसके पास रहते हैं, अर्थात् मिलते हैं।

390– जिस प्रकार वेदों में प्रणव और ब्राह्मणों के लिए सूर्य पूज्य हैं, उसी प्रकार संसार में स्वर-योगी पूज्य होता है।

391 – तीन नाडियों और पाँच तत्वों का जिन्हें सम्यक ज्ञान होता है, उन्हें समग्र ज्ञान हो जाता है। विभिन्न प्रकार की औषधियों, जड़ी-बूटियों अथवा अनेक प्रकार के रसायनों का ज्ञान भी उनकी बराबरी नहीं कर सकता। तीन नाड़ियों और पाँच तत्वों के ज्ञाता को इन चीजों की आवश्यकता नहीं पड़ती। क्योंकि वह इनकी सहायता से सब कुछ करने में समर्थ होता है, यहाँ तक कि मृत्यु को भी पराजित करने में सक्षम होता है।

392– इस प्रकार के ज्ञान से सम्पन्न महात्मा यदि आपको इस विद्या का थोड़ा ज्ञान भी देता है, तो इससे बढ़कर इस विश्व में कुछ भी नहीं है तथा उसके ऋण से कभी भी उऋण नहीं हो सकते।

393– भगवान शिव कहते हैं कि हे देवि, युद्ध, स्त्री-वशीकरण, गर्भाधान, व्याधि एवं मृत्युकाल के परिप्रेक्ष्य में मैंने तुम्हें स्वर और तत्वों का वर्णन किया है।

394– इस संसार में सिद्धों और योगियों द्वारा प्रसिद्ध ज्ञान का प्रवर्तन किया गया है, उसका जो नियम-पूर्वक जप और पाठ करेगा तथा पालन करेगा, विशेषकर सूर्य और चन्द्र ग्रहण के समय, तो वह सिद्धिदायक होगा और उससे साधक को पूर्णत्व प्राप्त होगा।

395– जो व्यक्ति अपने स्थान पर बैठकर परमात्मा का ध्यान करता है, अधिक नहीं सोता तथा मिताहारी (कम भोजन करनेवाला) है और उसे जानता है, वही कर्मशील होता

है।....SHIVOHAM....

शिव स्वरोदय के आधार पर स्वरों के साथ उनमें प्रवाहित होने वाले पंच तत्वों का विचार कैसे करें?

क्या है पंच तत्वों का महत्त्वपूर्ण सूक्ष्म विज्ञान?-

08 FACTS;-1-पंच तत्वों के द्वारा इस समस्त सृष्टि का निर्माण हुआ है। मनुष्य का शरीर भी पाँच तत्वों से ही बना हुआ है।पंचतत्व को ब्रह्मांड में व्याप्त लौकिक एवं अलौकिक वस्तुओं का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष कारण और परिणति माना गया है। ब्रह्मांड में प्रकृति से उत्पन्न सभी वस्तुओं में पंचतत्व की अलग-अलग मात्रा मौजूद है। अपने उद्भव के बाद सभी वस्तुएँ नश्वरता को प्राप्त होकर इनमें ही विलीन हो जाती है।तुलसीदास जी ने रामचरितमानस के किष्किंधाकांड में लिखा है "क्षिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित यह अधम सरीरा।"।यह पाँच तत्व है..क्रमश:, क्षिति यानी कि पृथ्वी, जल यानी कि पानी, पावक यानी कि आग, गगन यानी आकाश और समीर यानी कि हवा।

2-योगविद्या में तत्व साधना का अपना महत्त्व एवं स्थान है। पृथ्वी आदि पाँच तत्वों से ही समस्त संसार बना हैं। विद्युत आदि जितनी भी शक्तियाँ इस विश्व में मौजूद हैं। वे सभी इन पञ्च तत्वों की ही अन्तर्हित क्षमता है। आकृति-प्रकृति की भिन्नता युक्त जितने भी पदार्थ इस संसार में दृष्टिगोचर होते हैं वे सब इन्हीं तत्वों के योग-संयोग से बने हैं।न केवल शरीर की,वरन् मन की

भी बनावट- तथा स्थिति में इन्हीं पंचतत्वों की भिन्न मात्रा का कारण है। शारीरिक, मानसिक दुर्बलता एवं रुग्णता में भी प्राय: इन तत्वों की ही न्यूनाधिकता पर्दे के पीछे काम करती रहती है।

3-हमारे मनीषियों ने इन पंच तत्त्वों को सदा याद रखने के लिए एक आसान तरीका निकाला और कहा कि यदि मनुष्य 'भगवान' को सदा याद रखे तो इन पांच तत्वों का ध्यान भी बना रहेगा। उन्होंने पंच तत्वों को किसी को भगवान के रूप में तो किसी को अलइलअह

अर्थात अल्लाह के रूप में याद रखने की शिक्षा दी।भगवान में आए इन अक्षरों का विश्लेषण इस प्रकार किया गया है- भगवान- भ- भूमि यानि पृथ्वी, ग- गगन यानि आकाश, व- वायु यानि हवा, अ- अग्नि अर्थात आग और न- नीर यानि जल।

इसी प्रकार अलइलअइ (अल्लाह)अक्षरों का विश्लेषण इस प्रकार किया गया है-

अ- आब यानि पानी, ल- लाब- यानि भूमि, इ- इला-दिव्य पदार्थ अर्थात वायु, अ- आसमान यानि गगन और

ह- हरंक यानि अग्नि। इस पांच तत्वों के संचालन व समन्वय से हमारे शरीर में स्थित चेतना (प्राणशक्ति) बिजली-सी होती है।

4-इससे उत्पन्न विद्युत मस्तिक में प्रवाहित होकर मस्तिष्क के 2.4 से 3.3 अरब कोषों को सक्रिय और नियमित करती है। ये कोष अति सूक्ष्म रोम के सदृश्य एवं कंघे के दांतों की तरह पंक्ति में जमे हुए होते हैं। मस्तिष्क के कोष ...पांच प्रकाश के होते हैं और पंच महाभूतों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश) का प्रतिनिधित्व करते हैं। मूलरूप से ये सब मूल तत्व हमारे शरीर में बराबर मात्रा में रहने चाहिए।इन तत्वों का जब तक शरीर में उचित भाग रहता है तब तक स्वस्थता रहती है। जब कमी आने लगती है तो शरीर निर्बल,

निस्तेज, आलसी, अशक्त तथा रोगी रहने लगता है। स्वास्थ्य कंो कायम रखने के लिए यह आवश्यक है कि तत्वों को उचित मात्रा में शरीर में रखने का हम निरंतर प्रयत्न करते रहें और जो कमी आवे उसे पूरा करते रहें।

5-पृथ्वी तत्व असीम सहनशीलता का द्योतक है और इससे मनुष्य धन-धान्य से परिपूर्ण होता है। इसके त्रुटिपूर्ण होने से लोग स्वार्थी हो जाते हैं। जल तत्व शीतलता प्रदान करता है। इसमें विकार आने से सौम्यता कम हो जाती है। अग्नि तत्व विचार शक्ति में सहायक बनता है और मस्तिष्क के भेद अंतर को परखने वाली शक्ति को सरल बनाता है। यदि इसमें त्रुटि आ जाए तो हमारी सोचने की शक्ति का ह्रास होने लगता है। वायु तत्व मानसिक शक्ति तथा स्मरण शक्ति की क्षमता को पोषण प्रदान करता है। अगर इसमें विकार आने लगे तो स्मरण शक्ति कम होने लगती है। आकाश तत्व आवश्यक संतुलन बनाए रखता है। इसमें विकार आने से हमारा शारीरिक संतुलन खोने लगता है।

6-पृथ्वी तत्व का केन्द्र मल द्वार और जननेन्द्रिय के बीच है इसे मूलाधार चक्र कहते हैं। जल तत्व का केन्द्र मूत्राशय की सीध में पेडू पर है इसे स्वाधिष्ठान चक्र कहते हैं। अग्नि तत्व का निवास नाभि और मेरुदण्ड के बीच में है इसे मणिपुर चक्र कहते हैं। वायु केन्द्र हृदय प्रदेश के अनाहत चक्र में है। आकाश तत्व का विशेष स्थान कण्ठ में है, इसे विशुद्ध चक्र कहा जाता है।
कब किस तत्व की प्रबलता है इसकी परख थोड़ा सा साधना अभ्यास होने पर सरलतापूर्वक की जा सकती है।

7-पृथ्वी तत्व का रंग पीला, जल का नीला/काला, अग्नि का लाल, वायु का हरा/ भूरा और आकाश का श्वेत /ग्रे है। आँखें बन्द करने पर दिखाई पड़े तब उसके अनुसार तत्व की प्रबलता आँकी जा सकती है। जिह्वा इन्द्रिय को सधा लेने पर मुँह में स्वाद बदलते रहने की प्रक्रिया को समझकर भी तत्वों की प्रबलता जानी जा सकती है। पृथ्वी तत्व का स्वाद मीठा, जल का कसैला, अग्नि का तीखा, वायु का खट्टा और आकाश का खारी होता है। गुण एवं स्वभाव की दृष्टि से यह वर्गीकरण किया जाय तो अग्नि और आकाश सतोगुण वायु और जल रजोगुण तथा पृथ्वी को तमोगुण कहा जा सकता है।

8-शरीर विश्लेषणकर्त्ताओं रासायनिक पदार्थों की न्यूनाधिकता अथवा अमुक जीवाणुओं की उपस्थिति-अनुपस्थिति को शारीरिक असन्तुलन का कारण मानते हैं, पर सूक्ष्मदर्शियों, की दृष्टि में तत्वों का-असन्तुलन ही इन समस्त संभ्रातियों का प्रधान कारण होता है। किस तत्व को शरीर में अथवा मन क्षेत्र में कमी है उसकी पूर्ति के लिए क्या किया जाय, इसका पता लगाने के लिए तत्व विज्ञानी किसी व्यक्ति में क्या रंग कम पड़ रहा है, क्या घट रहा है यह ध्यानस्थ होकर देखते हैं और औषधि उपचारकर्ताओं की तरह जो कमी पड़ी थी, जो विकृति बड़ी थी उसे उस तत्व प्रधान आहार- विहार में अथवा अपने में उस तत्व को उभार कर उसे अनुदान रूप रोगी या अभावग्रस्त को देते हैं। इस तत्व उपचार का लाभ सामान्य औषधि चिकित्सा की तुलना में कहीं अधिक होता है।

.पंच तन्मात्राओं का पंच ज्ञानेन्द्रियों से सम्बन्ध;-

13 FACTS;-

1- पाँच इन्द्रियों के खूँटे से, पाँच तन्मात्राओं के रस्सों से जीव बँधा हुआ है। यह रस्से बड़े ही आकर्षक हैं ।परमात्मा ने पंच तत्वों में तन्मात्रायें उत्पन्न कर और उनके अनुभव के लिये शरीर में ज्ञानेन्द्रियाँ बनाकर, शरीर और संसार को आपस में घनिष्ठ आकर्षण के साथ सम्बद्ध कर दिया है। यदि पंचतत्व केवल स्कूल ही होते, उनमें तन्मात्रायें न होतीं तो इन्द्रियों को संसार के किसी पदार्थ में कुछ आनन्द न आता।

पाँचतत्व पाँच ज्ञानेन्द्रिय पाँचतन्मात्रा

1-1-आकाश कान' 'शब्द'

1-2-वायु त्वचा 'स्पर्श'

1-3-अग्नि नेत्र 'रूप'

1-4-जल जीभ 'रस'

1-5-पृथ्वी नासिका 'गन्ध'

2-आकाश की तन्मात्रा 'शब्द' है। वह कान द्वारा हमें अनुभव होता है। कान भी आकाश तत्व की प्रधानता वाली इन्द्रिय हैं।

3-वायु की तन्मात्रा 'स्पर्श' का ज्ञान त्वचा को होता है। त्वचा में फैले हुए ज्ञान तन्तु दूसरी वस्तुओं का ताप, भार, घनत्व एवं उसके स्पर्श की प्रतिक्रिया का अनुभव कराते हैं।

4-अग्नि तत्व की तन्मात्रा 'रूप' है। यह अग्नि- प्रधान इन्द्रिय नेत्र द्वारा अनुभव किया जाता है। रूप को आँखें ही देखती हैं।

5-जल तत्व की तन्मात्रा 'रस' है। रस का जल-प्रधान इन्द्रिय जिह्वा द्वारा अनुभव होता है, षटरसों का खट्टे, मीठे, खारी, तीखे, कड़ुवे, कसैले का स्वाद जीभ पहचानती है।

6-पृथ्वी तत्व की तमन्मात्रा 'गन्ध' को पृथ्वी गुण प्रधान नासिका इन्द्रिय मालूम करती है।

7-इन्द्रियों में तन्मात्राओं का अनुभव कराने की शक्ति न हो तो संसार का और शरीर का सम्बन्ध ही टूट जाय। जीव को संसार में जीवन-यापन की सुविधा भले ही हो पर किसी प्रकार का आनन्द शेष न रहेगा। संसार के विविध पदार्थों में जो हमें मनमोहक आकर्षण प्रतीत होते हैं उनका एकमात्र कारण 'तन्मात्र' शक्ति है।

8-कल्पना कीजिये कि हम संसार के किसी पदार्थ के रूप में को न देख सकें तो सर्वत्र मौन एवं नीरवता ही रहेगी। स्वाद न चख सकें तो खाने में कोई अन्तर न रहेगा। गंध का अनुभव न हो तो हानिकारक सड़ाँध और उपयोगी उपवन में क्या फर्क किया जा सकेगा। त्वचा की शक्ति न हो तो सर्दी, गर्मी, स्नान, वायु- सेवन, कोमल शैय्या के सेवन आदि से कोई प्रयोजन न रह जायेगा।

9-मानवीय विद्युत की ऊर्जा शरीर के हर अंग में रहती है और वह बाह्य जगत से सम्बन्ध मिलाने के लिए त्वचा के परतों में अधिक सक्रिय रहती है। शरीर का कोई भी अंग स्पर्श किया जाय उसमें तापमान की ही तरह विद्युत ऊर्जा का अनुभव किया जायेगा। यह ऊर्जा सामान्य बिजली की तरह उतना स्पष्ट झटका नहीं मारती या मशीनें चलाने के काम नहीं आती फिर भी अपने कार्यों को सामान्य बिजली की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह सम्पन्न करती है।मस्तिष्क स्पष्टत: एक जीता जागता बिजलीघर है।

10--समस्त काया में बिखरे पड़े अगणित तन्तुओं में संवेदना सम्बन्ध बनाये रहने, उन्हें काम करने की प्रेरणा देने में मस्तिष्क को भारी मात्रा में बिजली खर्च करनी पड़ती है। उसका उत्पादन भी खोपड़ी के भीतर ही होता है ! अधिक समीपता के कारण अधिक मात्रा में बिजली उपलब्ध हो सके, इसीलिए प्रकृति ने महत्त्वपूर्ण ज्ञानेन्द्रियाँ सिर के साथ जोड़कर रखी हैं। आँख, कान, नाक, जीभ जैसी महत्त्वपूर्ण ज्ञानेन्द्रियाँ गरदन से ऊपर ही हैं। इस शिरो भाग में सबसे अधिक विद्युत मात्रा रहती है इसलिए तत्त्वदर्शी आँखें हर मनुष्य के सिर के इर्द-गिर्द प्राय डेढ़ फुट के घेरे में एक तेजोवलय का प्रकाश ..'लाल गोल घेरा' चमकता देख सकती हैं।

11-देवताओं के चित्रों में उनके चेहरे के इर्द-गिर्द एक सूर्य जैसा प्रकाश गोलक बिखरा दिखाया जाता है। इस अलकांर चित्रण में तेजोबलय (Halo)की अधिक मात्रा का आभास मिलता है। अधिक तेजस्वी और मनस्वी व्यक्तियों में स्पष्टत: यह मात्रा अधिक होती है उसी के सहारे वे दूसरों को प्रभावित करने में समर्थ होते हैं।तेजोबलय(Halo) में इन्द्र धनुष जैसे अलग-अलग रेखाओं वाले तो नहीं पर मिश्रित रंग घुले रहते हैं। उनका

मिश्रण मन: क्षेत्र में काम करने वाले तत्वों की न्यूनाधिकता के हिसाब से ही होता है। तत्वों की सघनता के हिसाब से रंगों का आभास इस तेजोबलय (Halo)की परिधि में पाया जाता है।

12-सूक्ष्म शरीर में कब कौन सा तत्व बढ़ा हुआ है और किस तत्व की प्रबलता के समय क्या करना अधिक फलप्रद होता है ? यदि इस रहस्य को
जाना जा सके तो किसी महत्त्वपूर्ण कार्य का आरम्भ उपयुक्त समय पर किया जा सकता है और सफलता का पक्ष अधिक सरल एवं प्रशस्त बनाया जा सकता है।तत्ववेत्ता मन: शास्त्रियों को अपनी दिव्यदृष्टि इतनी विकसित करनी पड़ती है कि मनुष्य के चेहरे के इर्द-गिर्द विद्यमान तेजोबलय की आभा को देख सकें और उसमें रंगों की दृष्टि से क्या परिवर्तन हुआ है इसे समझ सकें।

13-व्यक्ति की त्वचा का रंग चेहरे पर उड़ता हुआ तेजोबलय(Halo),
उसकी स्वाद सम्बन्धी अनुभूतियाँ रंग विशेष की पसन्दगी को कुछ परख कर यह जाना जा सकता है कि उसके शरीर में किस तत्व की न्यूनता एवं
किसकी अधिकता है।जिस की न्यूनता हो उसे पूरा करने के लिए उस रंग के वस्त्रों का उपयोग, कमरे की पुताई, खिड़कियों के पर्दे, उसी रंग के काँच में कुछ समय पानी रखकर पीने की प्रक्रिया अपनाई जाती है। आहार में अभीष्ट रंग के फल आदि का प्रयोग कराया जाता है। रंगीन बल्व की रोशनी पीड़ित भाग या समस्त अंग पर डाली जाती है ।

पांचो तत्वों के गुणों का वर्णन ;-

06 FACTS;-

1-मिट्टी...इसका तत्व नाक है। उसको घ्राण कहते है। सुगंध और दुर्गन्धका ज्ञान उसीसे होता है। पृथ्वी तत्व का वर्ण पीला है। यह धीमी गति से मध्य में प्रवाहित होता है। इसकी प्रकृति हल्की और उष्ण है। ठोढ़ी तक इसकी ध्वनि होती है। इसके प्रवाह के दौरान किए गए कार्यों में भी स्थायी रूप से सफलता मिलती है।

2-जल ... इसका तत्व रसना है। स्वाद उसीसे लिया जाता है ! जलके प्रभावसे शरीर सदा खुश रहता है। खारा, मीठा,कडवा, स्वाद उसीसे मालूम होते है । तत्व श्वेत वर्ण का होता है। इसका प्रवाह तेज और नीचे की ओर होता है। इसके प्रवाह काल में साँस की आवाज अधिक होती है और इस समय साँस सोलह अंगुल (लगभग 12 इंच) लम्बी होती है। इसकी प्रकृति शीतल है। इसके प्रवाह काल में प्रारम्भ किये गये कार्य सफलता (क्षणिक) मिलती है।

3-अग्नि...इसका तत्व आँख है। उसे दृष्टि कहते है ! इसमें प्रकाश भरा हुआ है । अग्नि तत्व रक्तवर्ण है। यह घुमावदार तरीके से प्रवाहित होता है। इसकी प्रकृति काफी उष्ण है। इसके प्रवाह काल में साँस की लम्बाई चार अंगुल और ऊपर की ओर होती है। इसे क्रूरतापूर्ण कार्यों के लिए उपयोगी बताया गया है।

4-वायु....इसका तत्व शरीर है । जिसको त्वक कहते है। सर्दी,गर्मी,कठोरता,कोमलता का ज्ञान उसीसे होता है। वायु तत्व कृष्ण वर्ण (गहरा नीला रंग) है, इसके प्रवाह के समय साँस की लम्बाई आठ अंगुल और गति तिर्यक (तिरछी) होती है। इसकी प्रकृति शीतोष्ण हैं। इस अवधि में गति वाले कार्यों को प्रारम्भ करने पर निश्चित रूप से सफलता मिलती है।

5-आकाश...इसका तत्व कान है । इसे श्रोत कहते है। अच्छे बुरे शब्द इसी श्रोत इन्द्रियसे ही जाने जाते है। ये ही कान है। अगर कान न हो तो मनुष्य जड है।जब स्वर में उक्त सभी तत्त्वों का संतुलन हो और उनके यथोक्त गुण उपस्थित हों तो उसे योगियों को मोक्ष प्रदान करनेवाला आकाश तत्व समझना चाहिए, अर्थात आकाश तत्व में अन्य चार तत्वोंका संतुलन पाया जाता है और उनके गुण भी पाए जाते हैं तथा इसके प्रवाह काल किए गये योग-साधना में पूर्णरूप से सिद्धि मिलती है।

आकाश तत्व का रंग पहचानना कठिन होता है। यह स्वादहीन और प्रत्येक दिशा में गतिवाला होता है। यह मोक्ष प्रदान करता है। आध्यात्मिक साधना के अतिरिक्त अन्य कार्यों में कोई फल नहीं प्राप्त होता है।

6-जब स्वर का प्रवाह ऊपर की ओर हो, अर्थात स्वर में अग्नि तत्त्व प्रवाहित हो, तो मारण की साधना प्रारम्भ करना उचित है। स्वर की गति नीचे की ओर हो, अर्थात स्वर में जल तत्व का उदय काल शांतिपूर्ण कार्य के लिए उचित होता है। स्वर का प्रवाह यदि तिरछा हो, अर्थात वायु तत्व का उदयकाल हो, तो उच्चाटन जैसी साधना के प्रारम्भ के लिए उचित समय होता है। पर स्वर का प्रवाह मध्य में होने पर, अर्थात पृथ्वी तत्व के प्रवाह-काल में स्तम्भन सम्बन्धी साधना का प्रारम्भ ठीक होता है। लेकिन आकाश तत्व के उदय काल को मध्यम, अर्थात किसी भी कार्य के लिए अनुपयोगी बताया गया है।

स्वरों में तत्वो का उदय ;-

03 FACTS;-

1-प्रत्येक नाड़ी के प्रवाह में पंच महाभूतों के उदय का क्रम बताया गया है, अर्थात् स्वर प्रवाह के प्रारम्भ में वायु तत्वों का उदय होता है, तत्पश्चात् अग्नि तत्व , फिर पृथ्वी तत्व , इसके बाद जल तत्व और अन्त में आकाश तत्व का उदय होता है।

2-हर नाड़ी में स्वरों का प्रवाह ढाई घटी अर्थात् एक घंटे का होता है। इस ढाई घटी या एक घंटे के प्रवाह-काल में पाँचों तत्वों बताए गए क्रम से उदित होते हैं। इन तत्व का प्रत्येक नाड़ी में अर्थात् चन्द्र नाड़ी और सूर्य नाड़ी दोनों में अलग-अलग किन्तु एक ही क्रम में तत्वों का उदय होता है।

3-तत्वों के स्वरों में उदय के समय इन्हें पहचानने की एक और बड़ी रोचक युक्ति बताई गई है। इसके अनुसार यदि दर्पण पर अपनी श्वास प्रवाहित की जाये तो उसके वाष्प से आकृति बनती है उससे हम स्वर में प्रवाहित होने वाले तत्व को पहचान सकते हैं। पृथ्वी तत्व के प्रवाह काल में आयत की सी आकृति बनती हैं, जल तत्व मेः अर्ध्द चन्द्राकार, अग्नि तत्व में त्रिकोणात्मक आकृति, वायु के प्रवाह के समय कोई निश्चित आकृति नहीं बनती। केवल वाष्प के कण बिखरे से दिखते हैं।

स्वरों के प्रवाह की लम्बाई;-

03 FACTS;-

1-स्वरों के प्रवाह की लम्बाई हमारे कार्यों की विभिन्नता के अनुसार इनकी लम्बाई या गति प्रभावित होती है। जैसे गाते समय12 अंगुल, खाना खाते समय 16 अंगुल, भूख लगने पर 20 अंगुल,सामान्य गति से चलते समय 18 अंगुल, सोते समय 27 अंगुल से 30 अंगुल तक, मैथुन करते समय 27 से 36 अंगुल और तेज चलते समय या शारीरिक व्यायाम करते समय इससे भी अधिक हो सकती है।

2-यदि बाहर निकलने वाली साँस की लम्बाई नौ इंच से कम की जाए तो जीवन दीर्घ होता है और यदि इसकी लम्बाईबढ़ती है तो आन्तरिक प्राण दुर्बल होता है जिससे आयु घटती है।

3-शास्त्र यहाँ तक कहते हैं कि बाह्य श्वास की लम्बाई यदि साधक पर्याप्त मात्रा में कम कर दे तो उसे भोजन की आवश्यकता नहीं पड़ती है और यदि कुछ और कम कर ले तो वह हवा में उड़ सकता है।

शिव स्वरोदय के आधार पर तत्वों और नक्षत्रों के सम्बन्ध;-

02 FACTS;-

1-पृथ्वी तत्व का सम्बन्ध रोहिणी, अनुराधा, ज्येष्ठा, उत्तराषाढ़, श्रवण, धनिष्ठा और अभिजित से, जल तत्व का आर्द्रा, श्लेषा, मूल, पूर्वाषाढ़, शतभिषा, उत्तरा भाद्रपद और रेवती से, अग्नि तत्व का भरणी, कृत्तिका, पुष्य,मघा, पूर्वा फाल्गुनी, स्वाती और पूर्वा भाद्रपद तथा वायु तत्व का अश्विनी, मृगशिरा, पुनर्वसु, उत्तरा फाल्गुनी, हस्त, चित्रा और विशाखा से है।

2-प्रथम पंचम पिंगला नाड़ी से स्वर प्रवाहित होने पर पृथ्वी तत्व का सूर्य से, जल का शनि से, अग्नि का मंगल से और वायु का राहु से सम्बन्ध माना जाता है तथा इड़ा नाड़ी में पृथ्वी का गुरू से, जल का चन्द्रमा से, अग्नि का शुक्र से और वायु का बुध से।

तत्वों को बदलने की आवश्यकता;-

05 FACTS;-

1-जिस प्रकार विभिन्न कार्यों का सम्पादन करने के लिए स्वर बदलने की आवश्यकता पड़ती है, वैसे ही तत्वों को बदलने की भी आवश्यकता भी पड़ती है। स्वरोदय विज्ञान के अनुसार स्वस्थ व्यक्ति में एक स्वर की एक घंटें की अवधि के दौरान सर्वप्रथम वायु तत्व आठ मिनट तक प्रवाहित होता है, जिसकी लम्बाई नासिका पुट से आठ अंगुल (6 इंच) मानी गयी है। 2-इसके बाद अग्नि तत्व बारह मिनट तक प्रवाहित होता है जिसकी लम्बाई चार अंगुल या 3 इंच तक होती है। तीसरे क्रम में पृथ्वी तत्व 20 मिनट तक प्रवाहित होता है और इसकी लम्बाई बारह अंगुल या नौ इंच तक होती है।

3-तत्वों के प्रवाह को बदलने के उनकी लम्बाई का ज्ञान और अभ्यास होना आवश्यक है और यदि हम स्वर की लम्बाई को तत्वों के अनुसार कर सकें तो स्वर में वह तत्व प्रवाहित होने लगता है।

स्वरों के साथ उनमें प्रवाहित होने वाले पंच तत्वों का विचार ;-

07 FACTS;-

1-दैनिक जीवन में जैसे कार्य का प्रारम्भ उपर्युक्त ढंग से करके स्वास्थ्य लाभ एवं सफलता प्राप्त करने की बात कही गई है, वैसे ही स्वरों के साथ उनमें प्रवाहित होने वाले पंच तत्वों का विचार करना भी अत्यन्त आवश्यक है। अन्यथा असफलता ही हाथ लगेगी। अतएव स्वरों के साथ उक्त विधान का प्रयोग करते समय उनमें प्रवाहित होने वाले तत्वों की पहिचान करना और तद्नुसार कार्य करना आवश्यक है।

2-भौतिक उन्नति या दीर्घकालिक सुख से सम्बन्धित कार्य या स्थायी शान्तिप्रद कार्यों में प्रवृत्त होते समय यह अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि उपयुक्त स्वर में पृथ्वी तत्व का उदय हो। अन्यथा अपेक्षित परिणाम नहीं मिलेगा। शास्त्रों का कथन है कि पृथ्वी तत्व की प्रधानता के साथ हमारा मन भौतिक सुख के कार्यों के प्रति अधिक आकर्षित होता है।

3-किसी भी स्वर में जल तत्व के उदय के समय किया गया कार्य तत्काल फल देने वाला होता है, भले ही फल अपेक्षाकृत कम हो। जल तत्व की प्रधानता होने पर परिणाम जल की तरह चंचल और उतार-चढ़ाव से भरा होता है। इसलिए इस समय ऐसा कोई कार्य नहीं करना चाहिए जिसमें अधिक भाग-दौड़ करना पड़े।

4-अग्नि तत्व का धर्म दाहकता है। इसलिए इसके उदयकाल में कोई भी कार्य प्रारम्भ करने से बचना चाहिए क्योंकि असफलता के अलावा कुछ भी हाथ नहीं आयेगा। यहाँ तक कि इस समय किसी बात पर अपनी राय भी नहीं देनी चाहिए, अन्यथा अप्रत्याशित कठिनाई में फँसने की नौबत भी आ सकती है। धन-सम्पत्ति से संबंधित दुश्चिन्ताएं, परेशानियाँ, वस्तुओं का खोना आदि घटनाएँ अग्नितत्व के उदयकाल में ही सबसे अधिक होती हैं।
5-वायु तो सर्वाधिक चंचल है। अतएव इसके उदयकाल में किया गया कार्य कभी भी सफल नहीं हो सकता। स्वामी सत्यानन्द जी ने अपनी पुस्तक 'स्वर-योग' में एक अद्भुत उदाहरण दिया है और वह हमें वायु तत्व के समय कार्य का चुनाव करने में सहायक हो सकता है। उन्होंने लिखा है कि यदि भीड़-भाड़ वाले प्लेटफार्म पर छूटती गाड़ी पकड़ने के लिए झपटते समय और वायु तत्व का उदय हो तो आप ट्रेन पकड़ने में सफल हो सकते हैं।

6-आकाश तत्व के उदय काल में ध्यान करने के अलावा कोई भी कार्य सफल नहीं होगा, यह ध्यान देने योग्य बात है।सुषुम्ना नाड़ी का प्रवाह काल आध्यात्मिक साधना अर्थात् ध्यान आदि के लिए सर्वोत्तम माना गया है। इसके अतिरिक्त यदि कोई अन्य कार्य इस काल में प्रारम्भ करते हैं तो उसमें सफलता नहीं मिलेगी। यदि अभ्यास द्वारा ऐसा कुछ किया जा सके जिससे सुषुम्ना नाड़ी का प्रवाह-काल बढ़ सके और उस समय आध्यात्मिक साधना की जाये, विशेषकर उस समय आकाश तत्व का उदय हो (यह एक विरल संयोग है), तो साधक को दुर्लभ और विस्मयकारी अनुभव होंगे।

7-संक्षेप में, यह ध्यान देने की बात है कि इडा और पिंगला स्वर में पृथ्वी तत्व और जल तत्व का उदय काल कार्य के स्वभाव के अनुकूल स्वर का चुनाव सदा सुखद होगा। इडा स्वर में अग्नि तत्व और वायु तत्व का उदयकाल अत्यन्त सामान्य फल देने वाला तथा पिंगला में विनाशकारी होता हैं। आकाश तत्व का उदय काल केवल ध्यान आदि कार्यों में सुखद फलदाता है।'शिव स्वरोदय' का कथन है कि दिन में पृथ्वी तत्व और रात में जल तत्व का उदयकाल सर्वोत्तम होता है। इससे मनुष्य स्वस्थ रहता है और सफलता की संभावना सर्वाधिक होती है।

पंच महाभूतों की स्थिति पाँच चक्रों में ;-

03 FACTS;-

1-यौगिक दृष्टि से शरीर विज्ञान में हमारे शरीर में शक्ति-केन्द्र स्थित हैं; जिन्हें योग में चक्र, आधार या कुण्ड के नाम से जाना जाता है। वैसे तो शरीर में अनेक चक्र हैं, किन्तु इनमें सात-मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत विशुद्ध, आज्ञा और सहस्रार चक्र मुख्य हैं।पंच महाभूतो की स्थिति क्रम से प्रथम पाँच चक्रों में मानी जाती है, जिसका विवरण नीचे देखा जा सकता है:-

चक्र>> मूलाधार>> स्वाधिष्ठान>> मणिपुर>> अनाहत >>विशुद्ध

पंच महाभूत>> पृथ्वी >>जल>> अग्नि >>वायु>> आकाश

2-स्वरोदय विज्ञान के अनुसार पंच महाभूतों की स्थिति उपर्युक्त स्थिति से थोड़ी भिन्न है। शिव स्वरोदय के अनुसार पृथ्वी जंघों में, जल तत्व पैरों में, अग्नि दोनों कंधों में, वायु नाभि में और आकाश मस्तक में स्थित हैं।अन्य मतानुसार पृथ्वी पैरों (Feet) में, जल घुटनों में, अग्नि दोनों कंधों के बीच में स्थित हैं। शेष दो तत्वों की स्थिति के विषय में कोई अन्तर नहीं है। 3- यदि हम शारीरिक और मानिसिक रूप से स्वस्थ हैं तो इनकी दिशा, लम्बाई, अवधि और क्रम निश्चित होते है, इन्हीं की सहायता से स्वरों में तत्वों की पहिचान की जाती है।

प्राणिक ऊर्जा के प्रवाह की दिशा;-

05 FACTS;-

1-शरीर में प्राणिक ऊर्जा के प्रवाह की दिशा की जानकारी आवश्यक है। यौगिक विज्ञान के अनुसार मध्य रात्रि से मध्याह्न तक प्राण नसों में प्रवाहित होता है, अर्थात् इस अवधि में प्राणिक ऊर्जा, सर्वाधिक सक्रिय होती है और मध्याह्न से मध्य रात्रि तक प्राण का प्रवाह शिराओं में होता है। मध्याह्न और मध्य रात्रि में प्राण का प्रवाह दोनों नाड़ी तंत्रों में समान होता है।

2-इसी प्रकार सूर्यास्त के समय प्राण ऊर्जा का प्रवाह शिराओं में और सूर्योदय के समय मेरूदण्ड में सबसे अधिक होता है। इसीलिए शास्त्रों में ये चार संध्याएँ कहीं गयी हैं जो आध्यात्मिक उपासना के लिए सर्वश्रेष्ठ मानी गयी हैं।

3-यदि व्यक्ति पूर्णतया स्वस्थ है तो उक्त क्रम से नाड़ी तंत्रों में प्राण का प्रवाह संतुलित रहता है अन्यथा हमारा शरीर बीमारियों को आमंत्रित करने के लिये तैयार रहता है। यदि इडा नाड़ी अपने नियमानुसार प्रवाहित होती है तो चयापचय जनित विष शरीर से उत्सर्जित होता रहता है, जबकि पिंगला अपने क्रम से प्रवाहित होकर शरीर को शक्ति प्रदान करती है।

4-योगियों ने देखा है और पाया है कि यदि साँस किसी एक नासिका से 24 घंटें तक चलती रहे तो यह शरीर में किसी बीमारी के होने का संकेत है। यदि साँस उससे भी लम्बे समय तक एक ही नासिका में प्रवाहित हो तो समझना चाहिए कि शरीर में किसी गम्भीर बीमारी ने आसन जमा लिया है और यदि यह क्रिया दो से तीन दिन तक चलती रहे तो निस्संदेह शीघ्र ही शरीर किसी गंभीरतम बीमारी से ग्रस्त होने वाला है।

5-ऐसी अवस्था में उस नासिका से साँस बदल कर दूसरी नासिका से तब तक प्रवाहित किया जाना चाहिए जब तक प्रात:काल के समय स्वर अपने उचित क्रम में प्रवाहित न होने लगे। इससे होने वाली बीमारी की गंभीरता कम हो जाती है और व्यक्ति शीघ्र स्वास्थ्य लाभ करता है।

.....SHIVOHAM...

क्या स्वरोदय विज्ञान से नाड़ी-शुद्धि संभव है?क्या नाड़ी-शुद्धि से साधकों के सभी दोष नष्ट हो जाते हैं ?

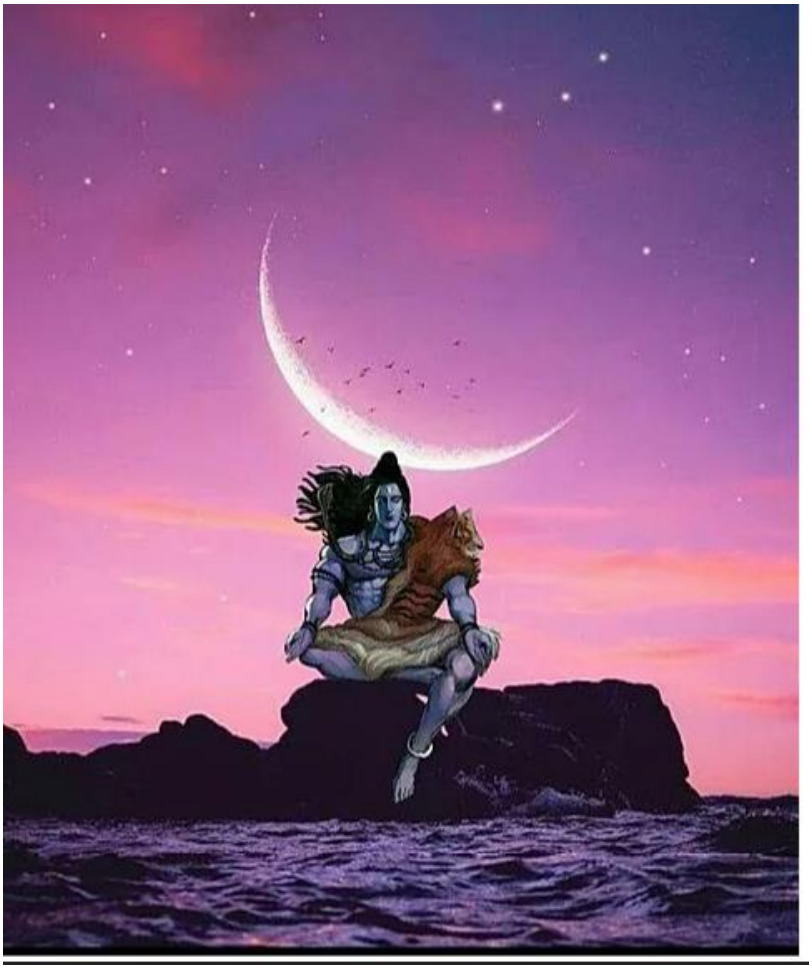

स्वरोदय विज्ञान;-

05 FACTS;-

1-स्वरोदय विज्ञान अपने आप में एक सम्पूर्ण विज्ञान है। स्वरोदय अर्थात नासिका के छिद्रों से ग्रहण किया जाने वाला श्वास जो कि वायु की शक्ल में होता है। विज्ञान अर्थात जॅहा पर किसी विषय की गूढ़तम बातें एंव प्रयोग कहे जाते है।

2-कब कौन सा काम शुरू करना होगा शुभ, नाड़ी ज्ञान से तय होता है
संसार का प्रत्येक जीव अपनी नासिका के छिद्रों द्वारा सॉस अर्जन करता है एंव उसका विर्सजन करता है।इसी सांस के द्वारा प्रत्येक जीव के प्राण स्थिर रहते है।

3-पृथ्वी तत्व युक्त चलने वाली सॉस मध्य में चलती है। जल तत्व से युक्त होकर चलने वाली श्वांस नीचे को बहती है।अग्नि तत्व से युक्त
होकर चलने वाली श्वांस ऊपर की ओर चलती है। वायु तत्व से युक्त होकर चलने वाली श्वांस तिरछी चलती है और आकाश तत्व से युक्त होकर चलने वाली श्वांस दोनों छिद्रों से प्रवाहित होती है।

4-दोनों कन्धों पर अग्नि तत्व निवास करता है। नाभि में वायु तत्व, घुटनों में पृथ्वी तत्व, पॉवों में जल तत्व और सिर में आकाश तत्व निवास करता है।

5-सूर्य स्वर साक्षात् शिव स्वरूप है। चन्द्र स्वर साक्षात् देवी स्वरूप है। सुषुम्ना स्वर साक्षात् काल स्वरूप है।

नाड़ियां क्या है?

10 FACTS;-

1-मानव शरीर में साढ़े तीन लाख नाड़ियां उपस्थित हैं,उनमें 14 नाड़ियां प्रमुख मानी गई हैं। वे हैं-सुषुम्णा, इड़ा, पिंगला, गांधारी, हस्तिजिह्वका, कुहू, सरस्वती, पूषा, शंखिनी, पयस्विनी, वारुणा, अलंबुषा, विश्वादरी और यशस्विनी। इन 14 नाड़ियों में भी पिंगला, इड़ा और सुषुम्णा ये तीन नाड़ियां प्रमुख हैं।

2-पिंगला,इड़ा और सुषुम्णा इन तीन नाड़ियों में से एक सुषुम्णा ही सर्वप्रमुख है,क्योंकि यह योगियों के लिए अत्यंत प्रिय है,क्योंकि यह उनके लिए परमपदरूप आश्रय को देने वाली है। अन्य जितनी भी नाड़ियां हैं, वे सब भी देह में ही स्थित रहती है। ये तीनों नाड़ियां कमल-तंतु के समान अधोमुख होकर स्थित रहती हैं। ये तीनों चंद्र, सूर्य और अग्नि रूपिणी हैः तथा शरीर के पृष्ठवंश अर्थात् मेरुदंड के आश्रय में अवस्थित हैं। उन नाड़ियों के बीच स्थित चित्रा नाड़ी अत्यंत विशिष्ट है। वहीं पर सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर श्रेष्ठ ब्रह्मरंध्र विद्यमान है।

3-इस प्रकार हम देखते हैं कि जिस परमपद -प्राप्ति की बात योगी व भक्तजन करते रहते हैं,वह शरीर में उपस्थित है। निरंतर साधना के जरिए हम शक्तियों को जगाकर परमपद की अनुभूति प्राप्त कर सकते हैं। वह चित्रा नाड़ी पंचवर्णा है, उज्ज्वल और शुद्ध भी है। सुषुम्णा के मध्य में स्थित चित्रा नाड़ी शरीर की उपाधि की कारणभूत भी है। यही वह दिव्य मार्ग है, जिसे अमृत और आनंद के रूप में बनाया गया है।

4-गुदास्थान से दो अंगुल ऊपर और मेरू से दो अंगुल नीचे, चार अंगुल विस्तार का एक आधार कमल समरूप से विद्यमान है। इसे मूलाधार चक्र कहते हैं। इस आधार कमल की कर्णिका में त्रिकोणाकार योनि सुशोभित है, जो सर्व प्रयत्नों द्वारा गोपनीय है अर्थात इसे किसी अनधिकारी के समक्ष नहीं कहना चाहिए,किंतु अधिकारी पुरुष से गोपनीय रखना व्यर्थ है।

5-वही परमदेवता स्वरूपा कुंडलिनी साढ़े तीन लपेटे लगाए हुए सुषुम्णा के मार्ग में स्थित रहती है। वह कुटिला अर्थात टेढ़ी और विद्युत रेखा के आकार की होती है। यह कुंडलिनी ही जगत् की सृष्टि स्वरूपा हैं। वही वाग्देवी वाच्य,अवाच्य रूप तथा देवताओं के द्वारा भी नमस्कृत की हुई है। 6-इड़ा और पिंगला नाड़ियों के मध्य में सुषुम्णा नाड़ी स्थित है। इस सुषुम्णा नाड़ी के छह स्थानों में (डाकिनी, हाकिनी, काकिनी, राकिनी और शाकिनी नाम की) छह शक्तियां रहती हैं, वहीं छह कमल भी विद्यमान हैं अर्थात मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धि और आज्ञा।

इन छह कमलों को छह चक्र भी कहते हैं। योग जानने वाले विद्वान इनको जानते हैं। सुषुम्णा के पांच स्थान हैं, जिनके अनेक स्थान हैं, जो कि प्रयोजन होने पर शास्त्रों के द्वारा जाने जा सकते हैं।

7-अन्यान्य नाड़ियां मूलाधार से निकलकर जीभ, नेत्र, पांवों के अंगूठे, कान, कुक्षि, कक्ष, हाथों के अंगूठे, गुदा, उपस्थ आदि अंगों में आकर समाप्त हो जाती हैं अर्थात सभी नाड़ियों का आश्रय मूलाधार ही है।

इन्हीं नाडियों से इनकी शाखा-उपशाखाएं निकलकर क्रमशः साढ़े तीन लाख नाड़ियां अपने-अपने स्थान में जाकर स्थित हो गई हैं। यह सभी नाड़ियां भोगवहा अर्थात भुक्त पदार्थों को प्रवाहित करने वाली होती हैं। यह वायु के संचार में अत्यंत दक्ष होती हैं पूरे शरीर म◌ें इन्हीं के जरिए प्राणवायु का संचार होता है। यह वायु के संचार में अत्यंत दक्ष एवं संयोग-वियोग से ओत-प्रोत होती हुई मनुष्य के कलेवर (देह) में विद्यमान रहती हैं।

8-बारह कलाओं से युक्त सूर्यमंडल के मध्य में जो अग्नि प्रज्वलित रहती है उसके द्वारा अन्न का पाचन होता है। वह वैश्वानर अग्नि मेरे(शिव) ही तेज से प्रकट हुई है। यह प्राणियों के देहों में विद्यमान रहकर विविध प्रकार के परिपाक में संलग्न रहती है। वही वैश्वानर अग्नि, आयु, बल और पुष्टि के देने वाली है, उसी से शरीर कांतिमय होता है और जितने भी रोग हैं, उन सबका नाश हो जाता है।

9-इस वैश्वानर अग्नि को विधिपूर्वक प्रज्वलित करना और फिर उसमें अन्न की आहुति देनी चाहिए। अर्थात इस वैश्वानर अग्नि को प्रज्वलित करने के लिए किसी सद्गुरु से शिक्षा लेनी चाहिए और जब इसके ठीक प्रकार से प्रज्वलित करना आ जाए तब उसके अनुकूल जो अन्न हो, उसका भोजन करें।

10-यह देह ब्रह्मांड संज्ञक है। इसमें अनेक स्थान भरे पड़े हैं। यहां प्रधान-प्रधान स्थान बताए गए हैं, जिन्हें शास्त्रों के अध्ययन से जाना जा सकता है। इस देह में विद्यमान ऐसे स्थानों को कई नामों से पुकारा जाता है। यहां जो बताया गया,उतना कहना ही बहुत है,उससे अधिक कहना व्यर्थ ही है। इस प्रकार कल्पित हुए शरीर में बसा हुआ जीव अनादि काल से चली आ रही वासना रूपी माला में घूमता हुआ कर्म की शृंखलाओं में बंधा रहता है। वह अनेक प्रकार के गुणों को ग्रहण करता हुआ संसार के सभी व्यापारों को किया करता है तथा पहले से उपार्जित शुभ-अशुभ विविध कर्मों के फलों को भोगता है।

दुख क्यों मिलता है?

02 FACTS;-

1-संसार में जितने भी शुभ-अशुभ कर्म दिखाई देते हैं, उन सभी का कारण एक मात्र कर्म ही है। सभी प्राणी कर्मों के अनुसार भोगों को भोगते रहते हैं। जो-जो सुख-दुःख के देने वाले कामादि दोष है, वे सभी जीव के कर्मानुसार ही प्रवृत्त होते हैं। तात्पर्य यह है कि मनुष्य के लिए सुख-दुख की प्रवृत्ति कर्म से ही हैं। शुभ कर्म से सुख और अशुभ कर्म से दुःख की प्राप्ति होती है।

2-पुण्य कर्मों के करने से शरीरधारी को सुख प्राप्ति की होती है और पुण्य के फलस्वरूप श्रेष्ठ भोज्य सामग्री अथवा अन्यान्य बाह्य वस्तुएं उसे स्वतः ही उपलब्ध हो जाती हैं। यह जीव कर्मबल से सुख अथवा दुख भोगने के लिए विवश है। वह जब पाप कर्म में आसक्त होता है तब उसे दुख ही मिलता है यदि सुख मिलता भी है तो क्षणिक और वह भी पूर्व संचित पुण्य के फलस्वरूप ही।

दुख या सुख क्या है ?

04 FACTS;-

1-जीव को अपने ही कर्म के फल को भोगना होता है,क्योंकि कर्म का फल ही दुख या सुख है। इसलिए जो कर्त्ता है, वही भोक्ता है, इसमें कोई संदेह नहीं अर्थात कर्त्ता से भोक्ता भिन्न नहीं हो सकता।

2-चैतन्य आत्मा के माया से उपहित होने पर ही संपूर्ण सृष्टि उत्पन्न होती है। जिस जीव के भोग के लिए जो काल निश्चित होता है, उसे उसी काल में अपने कर्म फल का भोग प्राप्त करने के लिए जन्म लेना होता है। जिस प्रकार नेत्र के दोष से शुक्ति(सीप) में रजत का आरोप होता है, उसी प्रकार जीव भी अपने ही कर्म दोष के प्रभाव से ब्रह्म में इस मिथ्या संसार प्रपंच का आरोप कर लेता है।वह वस्तु जिसमें भ्रम का आरोप होता है अधिष्ठान होती है। जैसे रज्जु (रस्सी)में सर्प और शुक्ति में रजत । यहाँ रज्जु और शुक्ति दोनों अधिष्ठान हैं क्योंकि इन्हीं में सर्प और रजत का भ्रम होता है ।

3-जीव को वासना के कारण ही भ्रम उत्पन्न हो जाता है और जब तक वासना निर्मूल नहीं होती, तब तक भ्रम भी नष्ट नहीं होता। इसी प्रकार जब ज्ञान उत्पन्न होता है, तब कुछ भी शेष नहीं रहता। इस कारण ज्ञान को ही मोक्ष का साधन समझना चाहिए।

4-जो कुछ भी विशेष दृष्टि से साक्षात दिखाई देता है, वही प्रत्यक्ष भ्रम का कारण होता है। अर्थात विशेष रूप से प्रत्यक्ष दिखाई देने वाले दृश्यजाल में ही जीव फंस जाता है, वही उसके बंधन का कारण है। माया का परदा बड़ा होने के कारण बुद्धि उस दृश्य प्रपंच से ऊपर नहीं उठती, इसलिए यथार्थ ज्ञान नहीं हो पाता।

आत्मसाक्षात्कार प्राप्ति का प्रयत्न;-

05 FACTS;-

1--यह साक्षात् दृश्यमान् पदार्थ का भ्रम तब तक नष्ट नहीं होता, तब तक कि ब्रह्म का प्रत्यक्ष अनुभव नहीं हो जाता और ब्रह्म का प्रत्यक्ष अनुभव तभी संभव है, जबकि आत्मा का प्रत्यक्ष अनुभव हो जाए। आत्मा का विशेष दर्शन होने पर ही संसार का मिथ्या ज्ञान मिट पाता है। आत्म-साक्षात्कार के अतिरिक्त अन्य किसी भी उपाय से उस अज्ञान की निवृत्ति नहीं हो सकती, जिस प्रकार की शुक्ति में रजत का भ्रम शुक्ति के प्रत्यक्ष हुए बिना नहीं मिट सकता।

2-क्योंकि जब तक आत्मा को साक्षात्कार नहीं होता, तब तक जीव को सभी भूत विविध प्रकार के दिखाई देते हैंजब तक कर्म से अर्जित यह

शरीर विद्यमान है, तब तक इसके निर्वाण का साधन कर लेना चाहिए। अर्थात् इस शरीर के रहते हुए ही आत्मज्ञान प्राप्ति का प्रयत्न कर लेना चाहिए, क्योंकि शरीर के छूटने पर तो कोई साधन हो नहीं सकता वरन् कर्मानुसार पुनर्देह धारण करना ही होगा। अन्यथा मनुष्य शरीर में जन्म लेकर शरीर को व्यर्थ भार ढोने से लाभ ही क्या हुआ?

3-अभिप्राय यह है कि आत्मज्ञान की प्राप्ति का प्रयत्न न करके विषय-भोगो में पड़ा रहना पृथिवी के लिए भारस्वरूप ही है। विषयों में आसक्त रहने वाले पुरुष सदा ही विषय सुख में डूबे रहते हैं और उनकी वाणी मोक्ष विषयक वार्तालाप में अवरुद्ध रहती हुई पाप कर्म में ही लगी रहती है। तात्पर्य यह है कि विषयासक्त पुरुषों की चर्चा में ही लगी रहती है। इस प्रकार वे मन, कर्म, वचन से विषय को ही सुख मानते हुए उन्हीं में लगे रहते हैं॥

4- ज्ञानी पुरुष जब आत्मा के द्वारा आत्मा को देखता हुआ अन्य किसी वस्तु को न देखे अर्थात आत्मा के अतिरिक्त कोई अन्य वस्तु उसे दिखाई न दे, तब मेरे मत से कर्म का परित्याग कर दे, तो उसके लिए कोई दोष नहीं होता। कामादि सभी पदार्थ ज्ञान में लीन हो जाते हैं। इसमें कुछ भी संदेह नहीं है। जब सभी तत्वों का अभाव हो जाता है, तब स्वयं तत्व- अर्थात आत्म ज्ञान ही प्रकाशित रहता है।

5-तात्पर्य यह है कि काम-क्रोध आदि विकारों को छोड़कर आत्मज्ञान की प्राप्ति का ही प्रयत्न करना चाहिए, क्योंकि आत्मज्ञान की उपलब्धि होने पर कोई भी विकार शेष नहीं रहता॥ जो मनुष्य इस शरीर को ब्रह्मांड जान लेता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर परमगति को प्राप्त हो जाता है।

योगसिद्धि क्या है ? ;-

05 FACTS;-

1-अब मैं योगसिद्धि के विषय में कहता हूं। इस विधि को जानने वाले योगी को योग के साधना में कष्ट प्रतीत नहीं होता। अभिप्राय यह है कि योग-साधन की विधि को जान लेने पर साधक को कष्ट नहीं होता और विधि को जान कर साधक को कष्ट नहीं होता और विधि को न जान कर योग साधना करना कष्टकारी प्रतीत होता है।

2-शरीर को सीधा रखकर, हाथों को जोड़कर गुरु ॐ को प्रणाम करें और बाएं और दाएं भाग में विघ्नों को नष्ट करने वाले गणेश जी को, क्षेत्रपाल को और भगवती अंबिका को प्रणाम करें। तत्पश्चात दाएं हाथ अंगूठे से पिंगला नाड़ी (दाएं नासारंध्र) को रोककर इडा नाड़ी (बाएं नासारंध्र) से यथाशक्ति वायु को खींचकर रोकें और फिर पिंगला द्वारा धीरे-धीरे बाहर निकाल दें। अर्थात एक नासारंध्र से पूरक (वायु को खींचना) करके कुंभक द्वारा (वायु को रोकना) और फिर दूसरे नासारंध्र से रेचन करें अर्थात वायु को निकाल दें। पूरक, कुंभक और रेचक, यह तीनों प्राणायाम के अंग हैं॥

3- इसी प्रकार फिर पिंगला नाड़ी से पूरक करके कुंभक करें और फिर इड़ा से धीरे-धीरे वायु को निकालें, वेगपूर्वक न निकालें, इस प्रकार योग के विधान से बीस बार कुंभक करने वाला व्यक्ति सभी द्वंद्वों से मुक्त हो जाता है। तात्पर्य यह है कि प्राणायाम के अभ्यास को उत्तरोत्तर बढ़ाता हुआ साधक वायु को वश में कर ले तो फिर उसके लिए कोई कष्ट शेष नहीं रहता॥

4-ऊपर कही हुई विधि से नित्य प्रति प्रातःकाल, मध्याह्न काल, सायंकाल और अर्द्धरात्रि के समय अर्थात् चार बार कुंभक करना चाहिए। इस प्रकार यदि आलस्य का त्याग करके नित्य नियमपूर्वक दो महीने तक प्राणायाम करने वाले व्यक्ति की नाड़ी-शुद्धि में विलंब नहीं होता अर्थात् नाड़ी निश्चित ही शुद्ध हो जाती है।

5- जब तत्त्वदर्शी योगी की नाड़ी शुद्ध हो जाती है, तब सभी दोष नष्ट हो जाते हैं और योग की नवीन प्रक्रियाओं का आरंभ किया जा सकता है। नाड़ी शुद्ध होने के पश्चात योगी के देह में जो चिन्ह दिखाई देते हैं, उन सभी को संक्षेप में कहता हूं।

नाड़ी शुद्ध होने के पश्चात योगी के देह में चिन्ह;-

13 FACTS;-

1-नाड़ी शुद्ध होने पर योगी का शरीर सम हो जाता है (अर्थात तब वह न मोटा रहता है न पतला) शरीर में सुगंध आने लगनी है श्रेष्ठ कांति अर्थात उज्जवल तेज दिखाई देता है,माधुर्य आ जाता है। इसी स्थिति को योगावस्था कहा जाता है।

2-सिद्धांत ग्रंथों (वेदादि) का श्रवण करें, सदा वैराग्य युक्त भाव से घर में रहं, ईश्वर का नाम संकीर्तन करते रहें, जो कुछ सुनें, वह शुभ ही सुनें अर्थात बुरी बातों को कभी न सुनें। धृति, क्षमा, तप, शौच और लज्जा का भाव रखें । इस प्रकार से नियमों के प्रति सदा तत्पर रहने वाला योगी शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त कर लेता है।

2-सूर्य नाड़ी अर्थात दांई नासिका में स्थित पिंगला नाड़ी का प्रवाह रहने पर योगी को भोजन करना चाहिए तथा चंद्र (इड़ा) नाड़ी में वायु का प्रवाह रहने पर शयन करना ठीक है। भोजन करने के तुरंत बाद अथवा भूखे रहने पर कभी भी अभ्यास न करं। अभ्यास काल के पूर्व घी का भोजन करना चाहिए।

3-वायु को वश में कर लेने पर कुंभक सिद्ध होता है और जब केवल कुंभक सिद्ध हो जाता है तब योगी क्या नहीं कर सकता? योगी के देह में पहली बार के प्रयत्न से पसीना आता है, योगी को उत्पन्न हुए पसीने का देह में ही मर्दन कर लेना चाहिए। यदि पसीने को देह में नहीं मलेगा तो धातु नष्ट हो जाएगी।

5-योग सिद्धि के लिए तब तक योगशास्त्रोक्त नियमों का पालन करें जब कि वायु की सिद्धि न हो जाए और जब तक अल्प निद्रा और अल्प मल-मूत्र न होने लगे। तत्वदर्शी योगी शारीरिक और मानसिक वेदना से परे हो जाते हैं साथ ही उनका शरीर पसीने जैसे मलों से भी मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

8-दूसरी बार के प्रयत्न से कंप होता है और तीसरी बार में मेंढक की वृत्ति होती है अर्थात मेंढक जिस प्रकार उछलता और पृथ्वी पर आ जाता है, वैसे ही योगी भी आसन भूमि से ऊंचा उठता और फिर भूमि पर आ जाता है। बाद मे योगी आकाश गमन में सक्षम हो जाता है।

6- जब अभ्यास दृढ़ हो जाए, तब उक्त नियमों के पालन की आवश्यकता नहीं रहती। योगाभ्यासी को थोड़ा-थोड़ा भोजन अनेक बार करना चाहिए। नित्य प्रति पूर्वोक्त प्रकार से कुम्भक करें। इससे कुंभक सिद्ध हो जाता है और साधक को इच्छानुसार वायु के धारण करने की शक्ति प्राप्त हो जाती है।

7-साधक के देह में कफ, पित्त और वात दूषित नहीं होते। निर्धारित समय तक योगी को भोजन आदि पर संयम रखना आवश्यक है। योगी यदि अत्यधिक भोजन करे अथवा बहुत कम खाए तो भी उसे कुछ कष्ट नहीं होता और अभ्यास करते-करते उसे भूचरी विद्या की सिद्धि हो जाती है, जिस प्रकार मेंढ़क हाथ मार कर पृथ्वी में घुसता है, वैसे ही योगी भी हाथ से ताड़न करके पृथिवी में प्रवेश करता है।

8- योगाभ्यास में अनेक अति दारुण विघ्न उपस्थित हो जाते हैं, उनका शमन होना अत्यंत कठिन है। फिर भी साधक का कर्त्तव्य है कि जब तक प्राण कंठगत न हो जाए, तब तक साधन में तत्पर रहे। अर्थात साधना में धैर्य की आवश्यकता होती है, इसलिए विघ्नों के उपस्थित होने पर निराश नहीं होना चाहिए।

9-साधक को विघ्नों को नष्ट करने के लिए इंद्रियों को वश में करने की चेष्टा करनी चाहिए। साथ ही एकांत स्थान में बैठकर मनोयोगपूर्वक स्पष्ट रूप से उच्चारण करते हुए ओंकार का जप भी करना चाहिए। विद्वान, साधक पूर्वजन्म के अर्जित कर्म और इस जन्म में किए गए कर्म ,इन दोनों के फल को प्राणायाम से अवश्य ही नष्ट कर डालता है।

10-योगियों में श्रेष्ठसाधक पूर्वजन्मों के अर्जित पाप-पुण्य रूपी कर्मों को सोलह प्राणायाम करके नष्ट कर डालता है। वह योगी पापों के समूह को वैसे ही नष्ट कर देता है जैसे आग सूखी घास को भस्म करत डालती है।

11-क्रमपूर्वक प्राणायाम का अभ्यास होने पर जब प्राणवायु को तीन घड़ी तक रोके रखने की शक्ति आ जाती है, तब योगी अपनी इच्छा के अनुसार सभी सिद्धियों को प्राप्त कर सकता है। इस बात में तनिक भी संदेह नहीं किया जाना चाहिए। वह वाक् सिद्धि में समर्थ हो जाता है अर्थात वह विभिन्न विषयों के मर्मभाव को अभिव्यक्त करने में सक्षम हो जाता है तथा उसके द्वारा कही गई बातें सत्य साबित होने लगती हैं।

12-सही-गलत के बीच विभेद करने का स्वविवेक उसके भीतर पैदा हो जाता है और दूरदर्शन की शक्ति भी आ जाती है। श्रुति अर्थात सुदूर के शब्दों को भी सुन सकता है, सूक्ष्म दर्शन अर्थात् सूक्ष्म वस्तु को देख सकता है और दूसरे के शरीर में प्रविष्ट हो सकता है।

13-उसके शरीर से निकलने वाले अपशिष्ट पदार्थ भी दूसरों के लिए स्वर्ण के समान हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में योगी को अदृश्य होने की शक्ति प्राप्त हो जाती है तथा आकाश में उड़ने की सामर्थ्य आ जाती है। इन सभी कार्यों को योगी,कुंभक को सिद्ध करके पूर्ण कर सकता है, इसके पश्चात् उसकी घटावस्था हो सकती है। वायु के अभ्यास में परायण योगी के लिए घटावस्था में संसार में सब कुछ प्राप्य हो जाता है।

घटावस्था क्या है ?

07 FACTS;-

1-प्राण, अपान, नाद, बिंदु, जीवात्मा और परमात्मा जब एकत्र हो जाए तब वह योगी की घटावस्था कहलाती है। जब योगी में एक प्रहर भर वायु-धारण की शक्ति आ जाए ,तब साधन में अंतर न आने पर अवश्य ही प्रत्याहार हो सकता है।

2-योगी को जिस-जिस पदार्थ की जानकारी हो,उसी-उसी पदार्थ में उसे आत्मा की भावना करनी चाहिए। जिन इंद्रियों के द्वारा पदार्थ का बोध होता हो उसी में आत्मभाव करने से योगी इंद्रियजयी हो जाता है।

3-अभिप्राय यह है कि जैसे चक्षु से रूप का या कानों से शब्द का बोध होता है, तब उसी रूप अथवा शब्द में आत्मा-भाव करने से चक्षु रूप में आसक्त न होंगे और कान शब्द में आसक्त न होंगे तो चक्षु या कान रूपी इंद्रिया स्वयं ही वश में हो जाएंगी। यही तथ्य अन्य इंद्रियों और उनके विषयों के संबंध में भी समझना चाहिए।

4-जब एक बार पूरे प्रहर अर्थात तीन घंटे तक योगाभ्यास द्वारा कुंभक में स्थिरता प्राप्त हो जाए अथवा आठ घड़ी तक वायु को निश्चल रखने का क्षमता प्राप्त हो जाए तो योगी के भीतर अपने ही सामर्थ्य से केवल पैर के अंगूठे पर खड़ा रहने की शक्ति आ जाती है। परंतु योगी को अपनी शक्तियों के प्रदर्शन के लोभ से बचना चाहिए। उसे अपनी सामर्थ्य की गोपनीयता रखने के लिए विक्षिप्त जैसी चेष्टा प्रदर्शित करनी चाहिए।

5-जब योगी पांच प्रकार की धारणा को सिद्ध कर लेता है तब उसमें पंचभूतों को धारण करने की क्षमता भी पैदा हो जाती है। फिर उन भूतों से उसे किसी प्रकार का भय नहीं होता। मूलाधार चक्र में वायु को पांच घड़ी अर्थात दो घंटे तक धारण करें।

6- फिर उससे ऊपर स्वाधिष्ठान चक्र में दो घंटे तक धारण किए रहें। इसी प्रकार मणिपुर चक्र में और अनाहद तक में भी दो-दो घंटे तक वायु धारण करने का विधान है। फिर विशुिद्ध चक्र और आज्ञा चक्र में भी पांच-पांच घड़ी तक ही वायु-धारणा का अभ्यास करें। इस प्रकार गुदा, मेढ़, नाभि, हृदय, कंठ और भृकुटियों के मध्य में स्थित षट्चक्रों में वायु धारणा करने के इस अभ्यास से सिद्ध होने वाले योगी क ा पंचभूतों के द्वारा नष्ट होना कदापि संभव नहीं है।

7-इस प्रकार का अभ्यास करने वाला योगी, सौ ब्रह्माओं का मृत्युकाल पूर्ण होने पर भी मृत्यु को प्राप्त नहीं होता।इस प्रकार ज्ञान की संपन्नता होने पर समाधि भी इच्छानुसार होती है। अर्थात् समाधि में जिस ध्येय का ध्यान किया जाता है, उसी में चित्त नितांत लीन हो जाता है। वह योगी वायु की चैतन्यता को ग्रहण करता हुआ क्रियाशक्ति को वेगवती बना लेता है और सभी चक्रों को जीतकर ज्ञानशक्ति में विलीन हो जाता है अर्थात् आत्मज्ञान या ब्रह्मज्ञान में ही तन्मय हो जाता है। इसी अवस्थ ा को शास्त्रों में ब्रह्मज्ञान की अवस्था कहा जाता है।

रोगनाशक उपाय;-

03 FACTS;-

1-शिवजी कहते हैं कि अब मैं क्लेशों को नष्ट करने के लिए प्राण वायु के उस साधन को कहता हूं, जिससे कि इस संसार चक्र में होने वाले रोगों का निश्चय ही नाश हो जाता है। आशय यह है कि साधक को मानसिक और शारीरिक रूप से स्वस्थ रहना आवश्यक है। अन्यथा साधना में चित्त नहीं लगेगा। इसीलिए शिवजी ने रोगनाशक उपाय कहा है कि यदि जिह्वा को तालु के मूल में लगाकर बुद्धिमान योगी प्राण-वायु का पान करता है, तो उसके रोगों का अवश्य नाश हो जाता है।।

2- इस प्रकार ज्ञान की संपन्नता होने पर समाधि भी इच्छानुसार होती है। अर्थात् समाधि में जिस ध्येय का ध्यान किया जाता है, उसी में चित्त नितांत लीन हो जाता है। वह योगी वायु की चैतन्यता को ग्रहण करता हुआ क्रिया शक्ति का वेगवती बना लेता है और सभी चक्रों को जीतकर ज्ञानशक्त ि में विलीन हो जाता है।

3-शिवजी कहते हैं कि अब मैं क्लेशों को नष्ट करने के लिए प्राण वायु के उस साधन को कहता हूं, जिससे कि इस संसार चक्र में होने वाले रोगों का निश्चय ही नाश हो जाता है। आशय यह है कि साधक को मानसिक और शारीरिक रूप से स्वस्थ रहना आवश्यक है। अन्यथा साधना में चित्त नहीं लगेगा। इसीलिए शिवजी ने रोगनाशक उपाय कहा है कि यदि जिह्वा को तालु के मूल में लगाकर बुद्धिमान योगी प्राण-वायु का पान करता है, तो उसके रोगों का अवश्य नाश हो जाता है॥

प्राण अपान की विधि; -

12 FACTS;-

1-विधान का जानने वाला जो साधक कौए की चोंच के समान मुख-मुद्रा बनाकर शीतल वायु को पीता है। वह साधक अवश्य ही मोक्ष का भाजन है, जो विद्वान विधि सहित नित्य प्रति सरस वायु का पान करता है, उसके सभी रोग, श्रम-दाह और वृद्धावस्था आदि का शीघ्र नाश हो जाता है। आशय यह है ऐसी साधना करने वालों के सभी रोग नष्ट हो जाते हैं और उसके लिए वृद्धावस्था कष्टकर साबित नहीं होती।

2-जो योगी जीभ ऊंची करके अर्थात ब्रह्मरंध्र मार्ग में ले जाकर चंद्रमा से निकलते हुए अमृतरस का पान करता है वह दीर्घजीवी हो जाता है और वह मरने से नहीं डरता। जीभ को ऊंची करके अमृत पान करना खेचरी मुद्रा की प्रक्रिया है, जो योगी नीचे के दांत से राजदंत को दबाकर उसके छिद्र के द्वारा विधिपूर्वक वायु को पीता है और साथ कुंडलिनी देवी का ध्यान करता है, वह छह महीने में ही कवि हो जाता है।

3-जो योगी जीभ ऊंची करके अर्थात ब्रह्मरन्ध्र मार्ग में ले जाकर चंद्रमा से नितलते हुए अमृतरस का पान करता है। अर्थात दीर्घ जीवी हो जाता है और वह मरने से नहीं डरता। जीभ को ऊंची करके अमृत पान करना खेचरी मुद्रा की प्रक्रिया है, जो योगी नीचे के दांत से राजदंत को दबाकर उसके छिद्र के द्वारा विधि पूर्वक वायु को पीता है और साथ कुंडलिनी देवी का ध्यान करता है तो वह छह महीने ही कवि हो जाता है।

4-ऊपर कही हुई काकी मुद्रा की विधि से जो योगी दोनों संध्याओं में कुंडलिनी के मुख का ध्यान करता हुआ प्राण वायु का पान करता है उनका क्षय रोग शीघ्र ही शांत हो जाता है, जो विद्वान योगी कौए की चोंच जैसी मुद्रा बनाकर दिन-रात प्राणवायु का पान करते हैं। उनके रोग अवश्य नष्ट हो जाते हैं तथा उन्हें दूर के शब्द श्रवण शक्ति प्राप्त होकर दूर दर्शन की क्षमता भी उपलब्ध हो जाती है। इस प्रकार वह रोगी सुक्ष्म की वस्तुओं को देखने में भी देखने में भी समर्थ हो जाता है।

5-जो मेधावी पुरुष दांत के द्वारा को पीड़ित करके तथा जीभ को ऊपर शर्नः शनैः वायु का पान करता है। वह शीघ्र ही मृत्यु को जीत कर चिरंजीवी हो जाता है जो योगी इस अभ्यास को नित्यप्रति करता है, वह छह महीने में ही सब पापों से मुक्त हो जाता है और उसके सभी रोग नष्ट हो जाते हैं।

6-यदि उक्त विधि से कोई योगी एक वर्ष तक अभ्यास करता रहे तो अवश्य ही मृत्यु को जीत लेता है, इसलिए योग साधन करने वाले मुमुक्षु को यत्नपूर्वक इसकी साधना करना चाहिए। यदि इस प्रकार का साधन तीन वर्ष तक लिया जाए, तो निश्चय ही वह भैरव हो जाता है अर्थात भैरव के समान सामर्थ्य प्राप्त हो जाती है साथ ही अणिमादि अष्ट सिद्धियों की उपलब्धि हो जाती है और उस साधक के वश में समस्त भूतगण स्वयं ही हो जाते हैं।

7-यदि योगी की जीभ आधे क्षण के लिए भी ऊपर स्थित हो जाए तो क्षण भर में ही सभी रोग,जरा- मरण का नाश हो जाता है। खेचरी मुद्रा द्वारा अमृतरूपी वायु का पान करने से व्यक्ति सभी व्याधियों से मुक्त हो जाता है। जो पुरुष जीभ को प्राण से संयुग्मित करके ब्रह्मरंध्र में ध्यान से अवस्थित हो जाता है, उसकी मृत्यु नहीं हो सकती है, मेरा (शिवजी)यह कथन नितांत सत्य है।

8-इस प्रकार योगाभ्यास करने वाली योगी द्वितीय कामदेव हो जाता है। (अर्थात कामदेव के समान रूप-लावण्य युक्त होता है) और उसे कभी भूख, प्यास, निद्रा या मूर्च्छा से पीड़ित नहीं होना पड़ता। इस विधान से अभ्यास करने वाला योगी संसार में सभी दुखों से रहित होकर इच्छानुसार आचरण करने में समर्थ होता है और किसी प्रकार की भी आपत्तियों में नहीं फंसता। 9-वह किसी प्रकार के पुण्य से भी लिप्त नहीं होता और संसार में पुनर्जन्म ही धारण करता है। यह दिव्य लोक में विचरण करने में समर्थ होने के कारण देवताओं के साथ सुखपूर्वक विचरण करता है। अर्थात वह सब प्रकार से समर्थ होकर सभी दिव्यताओं को प्राप्त कर लेता है।

10-यद्यपि योगासन बहुत प्रकार के है उनमें चौरासी प्रमुख हैं, उनमें भी चार अति प्रमुख माने जाते हैं। ये हैं- सिद्धासन, पद्मासन, उग्रासन और स्वास्तिकासन आशय। इनके द्वारा प्राणवायु भी सहज में ही वशीभूत होती है।

11-योग का जानने वाला साधक योनि स्थान को पांव की ऐड़ी से पीड़ित करे और द्वितीय पांव की एड़ी को मेढ्र के मूल स्थान पर रखे तथा भौंहों के मध्य में दृष्टि को स्थिर करके और जितेंद्रिय रहता हुआ, शरीर को सीधा, वेग-रहित करे। यह सिद्धों को भी सिद्धि प्रदान करने वाला सिद्धासन के रूप से जाना जाता है।

12-इस प्रकार योगाभ्यास करते-करते योग का ज्ञान शीघ्र ही हो जाता है। इसलिए यह सिद्धासन वायु का अभ्यास करने वाले साधक को अवश्य करना चाहिए। इसके प्रभाव से संसार-सागर से मुक्त होकर योगी परमगति को प्राप्त होता है। यह आसन सर्वश्रेष्ठ तथा अत्यंत गोपनीय है, जिसका ध्यान करने मात्र से योगी को सब पापों से मुक्ति होती है। इसके सिद्ध होने पर योगी को सब लाभों की प्राप्ति होती है।

.....SHIVOHAM...

- शिव संहिता के अनुसार ज्ञानी समस्त दुःखों से मुक्त हो जाता है।क्या ये संभव है ?

वास्तिविक ज्ञान क्या है ;-

09 FACTS;-

1-केवल एक ज्ञान ही नित्य और आदि अन्त से रहित है। जगत में ज्ञान से भिन्न कोई अन्य वस्तु विद्यमान नहीं है। इंद्रियों की उपाधि के द्वारा जो कुछ पृथक-पृथक प्रतीत होता है, वह केवल ज्ञान की भिन्नता के कारण ही प्रतीत होता है। भक्तों पर कृपा करने के

उद्देश्य से मैंने (शिव जी)यह योग का अनुशासन कहा है। सब भूतों की आत्मा मुक्तिदायक है। यह इस शास्त्र का लक्ष्य है जो मत विवादमय और दुर्ज्ञान के कारणरूप है, उनका त्याग करके आत्मज्ञान का आश्रय लें, यही भूतों की अनन्य गति है।

2-कोई विद्वान सत्य की प्रशंसा करते हैं तो कोई तपस्या की और कोई शुद्ध आचार को ही श्रेष्ठ बताते हैं। कोई क्षमा को उचित मानते हैं तो कोई सब में समान भाव रखना ही ठीक बताते हैं। कोई सरलता का अनुमोदन करते हैं तो कोई दान की ही प्रशंसा किया करते हैं। कोई पितर कर्म (तर्पणादि) की महत्ता स्वीकार करते हैं । कोई कर्म अर्थात सगुण उपासना को ही मान्यता देते हैं। कुछों के मत में वैराग्य ही श्रेष्ठ है।

3-कोई विद्वान पुरुष गृहस्थ धर्म को प्रशंसनीय कहते हैं तो कोई परमज्ञानी अग्निहोत्र आदि कर्मों को ही प्रशस्त मानते हैं। किसी के मत में मंत्र योग ही श्रेष्ठ है और किसी के विचार में तीर्थ यात्रा आदि करना या तीर्थसेवन करना ही श्रेष्ठ है। इस प्रकार अनेकानेक विद्वानों ने संसार सागर से मुक्त होने के लिए अपनी-अपनी मति के अनुसार अनेक उपाय बताए हैं।

4-इस प्रकार कृत्य और अकृत्य अर्थात विधि-निषेध कर्मों के ज्ञाता पुरुष पाप कर्मों से विमुक्त रहकर भी व्यामोह में ही पड़े रहते हैं तथा पाप-पुण्य के अनुष्ठान रूप उपयुक्त मतों के आश्रय में रहते हैं। परिणामस्वरूप अनुष्ठाता को जन्म-मरण के चक्र में बार-बार घूमते रहना होता है। इसका तात्पर्य यह है कि शुभ कर्मों के करने से चित्त की शुद्धि तो संभव है, परंतु मुक्ति मिल जाना संभव नहीं है।

5-कुछ विद्वान गोपनीय शास्त्रों के अध्ययन में तत्पर रहना श्रेष्ठ बताते हैं। अनेकों का कहना है कि आत्मा नित्य और सर्वज्ञ गमन करने में समर्थ है। कुछ भी सत्य नहीं हैं। वे अपने दृढ़ चित्त से यही कहते हैं कि स्वर्गादि लोक हैं ही कहां? अर्थात स्वर्गादि लोक कहीं है ही नहीं।

6-कुछ विद्वानों का मत है कि जो कुछ भी है, वह ज्ञान का प्रवाह ही है अर्थात संसार की सब दृश्यमान वस्तुएं ज्ञान के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं। किसी किसी का निश्चय है कि जो कुछ है, वह शून्य ही है(यह शून्यवादियों का मत है) इसी प्रकार कुछ लोगों के विचार में प्रकृति और पुरुष दो ही तत्त्व हैं।

7-जो परमार्थ के विरुद्ध है उनकी मति तो और भी भिन्न है। इस प्रकार अपनी अपनी मति के अनुसार मान्यता बनाए हुए लोग कर्मों में लगे रहते हैं। किन्हीं का कहना है कि ईश्वर है ही नहीं और किन्हीं का कहना है कि यह जगत प्रपंच ईश्वरमय ही है। इस भांति अनेक विद्वान अनेक भेदों का वर्णन करते हैं और अपने मत में दृढ़ता पूर्वक तत्पर रहते हैं अर्थात वे किसी अन्य मत की कोई बात भी सुनना चाहते ।

8-इस प्रकार अनेक मनुष्यों ने विभिन्न नाम वाले और पृथक पृथक विधि विधान वाले विविध मतों को लेकर शास्त्रों की रचना कर डाली है। परंतु ऐसे सभी शास्त्र लोकों को व्यामोह में डालने वाले हैं। अर्थात उन भिन्न भिन्न मत के शास्त्रों को पढ़ने से भ्रम उत्पन्न हो जाता है और साधक कुछ निश्चय करने में असमर्थ रहता है जिसके कारण जीवन समाप्त होने तक भी चित्त में भ्रांति बनी रहती है। परंतु ऐसे विवादशील पुरुषों का मत कहने की शक्ति हममें नहीं है, जिससे कि मनुष्य मुक्ति मार्ग को छोड़कर भवचक्र में ही भ्रमण करते रहते हैं।

9-सभी शास्त्रों का अवलोकन करके उन पर पुनः पुनः विचार करके यही निश्चय होता है कि एक मात्र यही योग शास्त्र परममत रूप एवं श्रेष्ठ है। इसकी ठीक प्रकार से रचना हुई है। इसको जानने के लिए अवश्य ही परिश्रम करना चाहिए। क्योंकि (जब अन्य शास्त्र निरर्थक ही हैं तब) उनका ज्ञान प्राप्त करने का प्रयोजन ही क्या है?

कर्मकांड का महात्म्य;-

04 FACTS;-

1-शिव जी कहते हैं कि मेरे द्वारा कहा गया यह योगशास्त्र गोपनीय है,इसलिए इसे तीनों लोकों में से केवल उसी को देना चाहिए,जो

कि महात्मा और श्रेष्ठ भक्त हो।

2-द के दो मत हैं-कर्मकांड और ज्ञानकांड। उनमें कर्मकांड और ज्ञानकांड दोनों के भी दो-दो भेद माने गए हैं। कर्मकांड के दो भागों को निषेध और विधि के नाम से जाना जाता है। निषेध कर्म के करने से अवश्य ही पाप होता है और विधि कर्म के कारण निश्चित रूप से पुण्य होता है।

3-विधि कर्म नित्य,नैमित्तिक और सकाम के भेद से तीन प्रकार के होते हैं। नित्यकर्म अर्थात देव-पूजन, संध्या आदि इसके न करने से पाप होता है। सकाम कर्मफल की इच्छा से किया जाता है और नैमित्तिक कर्म अर्थात पर्व काल में तीर्थ आदि के पुण्यजलों में स्नान दान आदि है, जिसके करने से पुण्य अर्जित होता है।

4-दो प्रकार का फल माना जाता है। स्वर्ग और नरक। स्वर्ग और नरक दोनों ही अनेक प्रकार के होते हैं। पुण्य कर्म करने वाले को स्वर्ग और पाप कर्म करने वाले को नरक की प्राप्ति होती है। यह सृष्टि निश्चय ही कर्मबंधन से युक्त है, इसे अन्यथा नहीं समझना चाहिए। सृष्टि के कर्म बंधन का तात्पर्य यह है कि संसार में आकर मनुष्य जो कुछ कर्म या अकर्म करता है,जब तक उनके फल का भोग नहीं किया जाता और जब तक किंचित भी कर्म शेष रहता है,तब तक संसार के बंधन से छुटकारा नहीं मिलता।

पुण्य और पाप;-

05 FACTS;-

1-स्वर्ग में जीव को अनेक प्रकार के सुखों का अनुभव प्राप्त होता है और इसी प्रकार नरक में उसे अनेक प्रकार के दुःसहनीय दुखों को भोगना होता है। पाप कर्मों के करने से दुःख की और पुण्य कर्मों का करने से सुख की प्राप्ति है, इसलिए हमेशा पुण्य कर्म करने के लिए प्रयास करना चाहिए।

2-जैसे पाप का फल भोग लेने पर जीव को पुनः संसार में जन्म लेना होता है, वैसे ही पुण्य का फल भोगने पर भी पुनर्जन्म ग्रहण करना होता है। ऐसा अवश्य होता है, इसमें अन्यथा नहीं समझना चाहिए।

3-स्वर्ग भी निश्चय ही दुःख का स्थान है, क्यों कि वहां परस्त्री का दर्शन (अप्सरा आदि का भोग) मिलता है, जिससे रागद्वेष ईर्ष्या आदि एवं इच्छित स्त्री के न मिलने से मानसिक व्यथा उत्पन्न होना स्वाभाविक है और यह सब दुःख रूप ही है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

4-मेधावी जनों ने पुण्य और पाप के रूप में दो प्रकार के कर्म कल्पित किए हैं। उन्हीं पाप-पुण्य रूपी कर्मों से शरीर बंधा हुआ है, जिससे कि जीव को बार-बार जन्म ग्रहण करना पड़ता है। इस लोक और परलोक के फल की कामना का और नित्य,नैमित्तिक आदि सभी कर्मों के फलों की आकांक्षा का त्याग करके मुमुक्षु पुरुष को योगाभ्यास में प्रवृत्त होना चाहिए।

5-योगी साधक के लिए आवश्यक है कि वह कर्मकांड के महात्म्य को जान लेने के पश्चात पुण्य और पाप दोनों प्रकार के कर्मों को छोड़ कर ज्ञानकांड में प्रवृत्त हो जाए। श्रुति का वचन है कि अरे, आत्मा ही सुनने के योग्य है, आत्मा ही मनन करने के योग्य है।

आत्मा ही मुक्ति को देनेे वाली और सभी को उत्पन्न करने वाली है। इसलिए, प्रयत्नपूर्वक आत्मा का सेवन करें।

क्या मनन करने योग्य केवल आत्मा ही है?

18 FACTS;-

1-जो चित्तवृत्ति बुद्धि को पाप और पुण्य दोनों में ही समान रूप से पे्ररित करती है, 'वह मैं हूं'(शिव जी) मुझसे ही इस संपूर्ण चराचर रूप जगत की उत्पत्ति होती है। यह संपूर्ण दृश्यमान प्रपंच मैं ही हूं, यह सब (मुझसे ही उत्पन्न होना और) मुझमें ही लीन हो जाता है। न वह मुझसे भिन्न है और न मैं उससे भिन्न हूं। इस प्रकार मुझसे भिन्न कुछ भी नहीं है। अभिप्राय यह है कि संसार की ऐसी मान्यता

रखनी चाहिए।

2-जिस प्रकार जल से परिपूर्ण मृत्तिका पात्र में एक ही सूर्य के अनेक प्रतिबिंब प्रतीत होते हैं,परंतु यथार्थ में वे अनेक नहीं होते,वरन् उनमें अनेकता का प्रतीति होती है। वैसे ही यह जगत भी एक ही परमसत्ता की अभिव्यक्ति है। एक सत्ता के अनेक रूपों में अभिव्यक्त होने के कारण ही हमको विविधता का बोध होता है। यह विविधता एक भ्रम है,सभी में एक ही प्रेरक शक्ति विद्यमान है।

3-जिस प्रकार स्वप्नावस्था में एक से ही अनेक प्रकार की कल्पना होती है, परंतु निद्रा के भंग होने पर कुछ भी दिखाई नहीं देता, उसी प्रकार जगत के अनेक रूपों की प्रर्रतीति माया के आवरण से ही होती है। फिर जब वह माया दूर हो जाती है, तब जगत का अनेकत्व दूर होकर एकमात्र शुद्ध ब्रह्म ही रह जाता है। जैसे रस्सी में सर्प की प्रतीति अथवा सीप में रजत की भ्रांति होने लगती है,वैसे ही परमात्मा में माया के आवरण से इस विश्व की भ्रांति होता है।

4-परंतु जब रस्सी का ज्ञान हो जाता है, तब सर्प की मिथ्या बुद्धि नहीं रहती, वैसे ही आत्मज्ञान होने पर यह मिथ्याभूत जगत भी नहीं रहता। इसी प्रकार जब यह ज्ञान हो जाता यह सीप है, तभी उसके रजत होने का भ्रम दूर हो जाता है, वैसे ही आत्मज्ञान के उत्पन्न होने पर जगत की भ्रांति समाप्त हो जाती है।

5-जैसे रस्सी में सर्प की भ्रांति होती है, वैसे ही जगत में भी भेद की प्रतीति होती है, अर्थात् जगत की भिन्नता रूपी भ्रांति रज्जु में सर्प भ्रांति के ही समान है- संसार की यह कल्पना अभ्यास मात्र ही है, इसमें यथार्थता किंचित् भी नहीं है। आत्मज्ञान होते ही मिथ्या संसार और विभिन्न प्रकार के भेद तिरोहित हो जाते हैं।

6-जिस प्रकार पित्तादि वे दूषित होने से पांडु रोग होकर निश्चय ही पीलापन प्रतीत होता है, वैसे ही ज्ञान रूप दोष के कारण आत्मा भी मिथ्या जगत के रूप से दिखाई देने लगता है। वह अज्ञान सरलता से दूर नहीं हो पाता।परंतु जब वह दूर हो जाता है, तब (पित्तादि दोषों के दूर होने पर) रोगी का पीलापन मिट कर शुक्ल रूप दिखाई देने के समान ही शुद्ध ब्रह्म का अनुभव होने लगता है। (इसीप्रकार अज्ञान भी रोग के समान है, जो कि आत्मज्ञान रूपी औषध के द्वारा ही नष्ट हो सकता है)।

7-जैसे कि त्रिकाल में भी रस्सी सर्प नहीं बन सकती, वैसे ही गुणों से परे और विशुद्ध आत्मा कभी भी विश्व नहीं बन सकता, यह निश्चित है।

8-जिस शास्त्र में आत्म-बोध विषयक उपदेश है, उसके अध्ययन से ही निश्चय होता है कि ईश्वर कहे जाने वाले इंद्रादि देवगण भी अनित्य ही हैं, अर्थात उनका भी आवागमन निश्चित है।

9-जैसे कि वायु क्षोभ से समुद्र में फेन और बुद्बुदे उत्पन्न होते और तुरंत ही समुद्र में लीन हो जाते हैं, वैसे ही माया के प्रभाव से आत्मा के द्वारा ही यह क्षणभंगुर संसार उत्पन्न होता और फिर आत्मा में ही लीन हो जाता है। आत्मा का संसार से अथवा किसी भी वस्तु से भेद नहीं है और भेदों की प्रतीति,भ्रम के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। भ्रम का नाश होते ही अनेकत्व के बोध का भी नाश हो जाता है।

10-जो उत्पन्न हो चुका है और जो भविष्य में उत्पन्न होगा अर्थात् जो कुछ मूर्तिमान है और जो कुछ अमूर्त है, वह यह संपूर्ण जगत माया के आवरण से आत्मा द्वारा ही प्रकट हुआ है। यह मिथ्या जगत अविद्या की कल्पना से कल्पित हुआ है। इसकी जड़ ही मिथ्यात्व पर आधारित है, तब यह स्वयं ही कैसे सत्य हो सकता है।

11-केवल चैतन्य आत्मा से ही यह संपूर्ण चराचर विश्व उत्पन्न होता है, इसलिए सब कुछ छोड़ कर एक चैतन्य आत्मा का आश्रय लेना ही श्रेयस्कर है। जैसे घट के भीतर और बाहर आकाश प्रवृत्त रहता है, वैसे ही आत्मा भी ब्रह्मांड के भीतर-बाहर पूर्ण रूप से व्याप्त रहती है।

12-जैसे सभी भूतों में आकाश सदा व्याप्त रहता है, वैसे ही आत्मा भी ब्रह्मांड के भीतर-बाहर रहती है। जिस प्रकार सभी भूतों से आकाश समन्वित रहता है, वैसे ही आत्मा भी संपूर्ण अर्थात उत्पन्न वस्तुओं में सदा निहित रहती है।

13-उस आत्मा का प्रकाशक कोई अन्य नहीं है, यह स्वयं ही प्रकाशमान रहती है और स्वयं प्रकाशमान होने के कारण ही वह ज्योति स्वरूप है। देश-काल के प्रमाण से वह अवच्छिन्न नहीं है। इसलिए आत्मा सदा सब प्रकार से परिपूर्ण है।

14-नाशवान पंचभूतों के नाश से इस (आत्मा) का नाश नहीं होता, क्योंकि आत्मा तो सदा अविनाशी है उस का किसी प्रकार से नाश संभव नहीं है। जब अन्य कोई है नहीं तो यह निश्चय है कि वह आत्मा ही सर्वत्र व्याप्त है। जब अन्य सब कुछ मिथ्या है, तो वही शुद्ध आत्मा सत्य हो सकती है।

15-अविद्या से उत्पन्न हुए इस संसार के दुख नष्ट होने पर सुख का उदय होता है,ऐसी मान्यता है। परंतु ज्ञान से दुख का न तो आदि है और न अंत ही है। आत्मा अवश्य ही सुख रूप है, जिसके द्वारा अज्ञान का नाश होता है। तब यह समझ में आता है कि विश्व का कारण ज्ञान ही है। इसलिए आत्मा ही ज्ञान है और ज्ञान सनातन अर्थात् अनादि काल से चला आता है।

16-काल के द्वारा विविध रूप वाला विश्व उत्पन्न होता है, इसलिए वह एक आत्मा ही है। इस प्रकार आत्मा के लिए कल्पना का कोई मार्ग खुला नहीं है अर्थात् आत्मा कल्पित नहीं वरन सत्य है। जो आत्मा से बाहर अर्थात् भिन्न पदार्थ हैं वे सब काल के प्राप्त हो जाने पर नष्ट हो जाते हैं। इसलिए आत्मा द्वैत रहित अर्थात अद्वैत है, उसको वाणी से नहीं अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता।

17-वह आकाश नहीं है, इसलिए उसमें शब्द का अभाव है। वह वायु नहीं है, इसलिए स्पर्श से परे हैं। वह अग्नि नहीं है, इसलिए रूप रहित है। वह जल नहीं है, इसलिए रसहीन है। वह पृथ्वी नहीं है, अतः उसमें गंध भी नहीं है। वह कार्य नहीं है, क्योंकि कारण से रहित है और न वह ब्रह्मादि ईश्वर ही है। वह तो पूर्णकाम है अर्थात उसे किसी प्रकार की कामना नहीं है। इस प्रकार आत्मा से, आत्मा को,आत्मा में ही देखने वाला योगी सभी संकल्पों को और मिथ्या भवजाल को त्याग कर संन्यास परायण रहता है।

18-वह योगी आत्मा से, आत्मा को,आत्मा में ही देखता हुआ सुखात्मक होकर संसार को भूल जाता है और आनंदरूपिणी समाधि में तीव्रता से रम जाता है।

माया क्या है?

16 FACTS;-

1-माया ही विश्व की जननी है, क्योंकि उसी से विश्व उत्पन्न होता है, किसी अन्य के द्वारा नहीं होता। इसलिए आत्मज्ञान के द्वारा इस माया के नष्ट हो जाने पर निश्चय ही इस विश्व प्रपंच का नाश हो जाता है।

यह संपूर्ण विश्व-प्रपंच माया की ही विलास है। इसलिए, इस शरीर को सुखात्मक मानकर इससे प्रीति करना ठीक नहीं है।

2-इस जगत में शत्रु, मित्र और उदासीन के रूप में तीन प्रकार का व्यवहार दिखाई देता है। प्रिय और अप्रिय के आधार पर होने वाले भेद से ही यह संपूर्ण जगत बंधा हुआ है।

3-पुत्र आदि कुटंबियों का सब नाता भी आत्मा की उपाधि से ही है। यह विश्व माया से ही विलसित है,ऐसा श्रुति के प्रमाण से जानकार ही योगीजन आत्मा में लीन रहते हैं। इस विश्व की उत्पत्ति-स्थिति कर्म से है अर्थात दुखादि कर्म से ही होते हैं, कर्म के न रहने पर कोई दुख नहीं रहता। जब आत्मा माया की उपाधि को जीत लेती है, तब माया रहित होने पर अखंड ज्ञानरूप विशुद्ध, ब्रह्म की प्रतीति होती है।

5-आत्मा स्वेच्छापूर्वक स्वयं ही प्रजाओं का सृजन करती है और इच्छा अविद्या से उत्पन्न होती है, जो कि स्वभाव से मिथ्या है,

इसलिए मिथ्या माया से उत्पन्न हुई सृष्टि भी मिथ्या ही है। शुद्ध ब्रह्म से विद्या का संबंध स्वाभाविक है और उस ब्रह्म के ही तेजरूप अंश से आकाश का प्राकट्य हुआ है।

6-उस आकाश से वायु और अग्नि प्रकट हुई। अग्नि से जल और जल से पृथ्वी प्रकट हुई। इस भांति आकाश से वायु और आकाश-वायु के योग से अग्नि उत्पन्न हुई।

7-आकाश,वायु और अग्नि के योग से जल की उत्पत्ति हुई तथा आकाश 'वायु' अग्नि और जल के संयोग से पृथ्वी उत्पन्न हुई।

8-आकाश का गुण शब्द है। वायु के दो गुण हैं, चंचलता और स्पर्श। तेज अर्थात अग्नि का गुण है। जल का गुण रस होता है। पृथ्वी का लक्षण गंध है। इस प्रकार आकाश में एक गुण, वायु में दो गुण, अग्नि में तीन और जल में चार होते हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध इन पांचों गुणों की विद्यमानता पृथ्वी में कल्पित की गई है।

9-नेत्रों के द्वारा रूप को ग्रहण किया जाता है और नासिका के द्वारा गंध का तथा जिह्वा के द्वारा रस ग्रहण किया जाता है। त्वचा से स्पर्श का और कानों से शब्द ग्रहण होते हैं। यह निश्चित नियम हैं जिनको किसी भी प्रकार से टाला नहीं जा सकता।।

10-यह संपूर्ण चराचर संसार एक ही चैतन्य से उत्पन्न हुआ है, इस प्रकार कल्पना से ही संसार सत्य प्रतीत होता है। परंतु संसार का अभाव होने पर उस एक विशुद्ध चैतन्य आत्मा के अतिरिक्त कुछ और शेष नहीं रहता। पृथिवी जल में लीन हो जाती है और जल अग्नि में लीन हो जाता है। वैसे ही अग्नि का वायु में ओर वायु का आकाश में लीन होना निश्चित है।

11-तत्पश्चात आकाश अविद्या में लीन हो जाता है और अविद्या स्वरूपिणी माया परमपद में जाकर लयभाव को प्राप्त हो जाती है। अर्थात प्रत्येक भूत अपने अपने कारण में लीन हो जाता है और तब एक मात्र ब्रह्मरूप परमपद ही शेष रहता है।

12-परमात्मा की यह दो शक्तियां विक्षेप और आवरण स्वरूप हैं। ये अत्यंत दुख देने वाली हैं, जिनका कि अंत ही नहीं हो पाता। वह महामाया त्रिगुणात्मिका अर्थात सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण से युक्त हैं। यह वन गुणों का इच्छित रूप धारण करती रहती है यही मायामायी आवरण शक्ति जब ज्ञान का आवरण ओढ़ लेती है तब स्वयं ही विज्ञानरूपिणी बन जाती है। फिर यही विक्षेप स्वभाव वाली शक्ति जगत् के आकार को प्रदर्शित करती हैं।

13-यही महाविद्या तमोगुण से युक्त होती है, तब दुर्गास्वरूप धारण कर लेती है और यही चैतन्य रूवरूप ईश्वर को आविर्भूत करती है, यह निःसंदेह सत्य है, जब यह सत्त्वगुण की अधिकता को धारण कर लेती है, तब दिव्य स्वरूप धारण करके विष्णुरूप चैतन्य को उत्पन्न करती है और जब यह विद्या रजोगुण के बाहुल्य से युक्त होती है, तब सरस्वती स्वरूपिणी होकर ब्रह्मारूप चैतन्य को उत्पन्न करती है।

14-तात्पर्य यह है कि तमोगुण की अधिकता से यही शक्ति दुर्गारूपिणी होकर संहारकर्त्ता शिव को प्रकट करती है, सत्त्वगुण का अधिकता से विश्व-पालक विष्णु को प्रकट करती है तथा रजोगुण की अधिकता से सरस्वती रूप होकर सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा को उत्पन्न करती है। इस प्रकार यह शक्ति ही संसार को उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय में कारण हैं। अलग-अगल गुणों के धारण करने से इसके स्वरूप में विभिन्नता दिखाई पड़ती है।

15-जितने भी देवता हैं, वे सब एक ही शक्ति की अभिव्यक्ति हैं। माया के अधीन होने के कारण विभिन्नता दिखायी पड़ती है। इसीलिए, विज्ञजनों ने सृष्टि की इस प्रकार कल्पना की है। सब कुछ आत्मा से ही उत्पन्न हुआ है। अतः आत्मा से भिन्न जो कुछ भी है वह सब कल्पना मात्र ही है।

16-प्रमेयत्वादि रूप अर्थात् संसार में जो कुछ भी दिखाई देता है, उन सबको प्रकाशित करने वाली एक आत्मा ही है। यह जो भिन्न-भिन्न रूप दिखाई देते हैं वह सब उपाधि के ही भेद है, यथार्थ में तो उसमें कुछ भेद नहीं है। एक सत्ता से परिपूर्ण हुई वह आत्मा ही सर्वत्र आनंदरूप से विद्यमान रहती है। उसे भिन्न कहीं कोई नहीं है, जिसने ऐसा ज्ञान प्राप्त करके उसमें चित्त को स्थित कर लिया है

वही पुरुष जन्म-मरण रूपी सांसारिक दुःखों से मुक्त हो गया।

क्या ज्ञानी समस्त दुःखों से मुक्त हो जाता है ?

10 FACTS;-

1-ज्ञान का प्रादुर्भाव होते ही सभी मिथ्या धारणाओं को उसमें विलोपन हो जाता है। उस सतत् विद्यमान आत्मा में मन को लीन कर लेना चाहिए। आत्मा में सभी उत्पन्न पदार्थों का लय हो जाता है, इसलिए मन को केंद्रित कर आत्मा का ही चिंतन करना चाहिए।

2-अपने पूर्व कर्मों के अनुसार ही जीव माता-पिता के वीर्य-रज से अन्नमय कोष धारण करता है। और पूर्व जन्म के कर्मा के अनुसार कर्मफल भोगता है। मांस, अस्थि स्नायु और मज्जा आदि नाड़ियों के बंधन से बंधा हुआ शरीर भोग-मंदिर रूप होकर दुःख का कारण होता है। अभिप्राय यह है कि यह शरीर ही दुःख स्वरूप है, इसलिए इसमें आत्म भाव रखना व्यर्थ ही है।

3-यह शरीर परमेष्ठी अर्थात ब्रह्मा के द्वारा पंचभूतों से बनाया गया है तथा ब्राह्मांड संज्ञक होकर सुख-दुख भोगने के लिए ही इसकी कल्पना की गई है। शिवरूप बिंदु और शक्तिरूप रज के संयोग से ही यह शक्तिस्वरूपा जड़ माया अपने ऐश्वर्य से ही स्वप्न के समान शरीरों को उत्पन्न करती है।

4-इस शरीर में सप्तद्वीपों के सहित सुमेरु पर्वत विद्यमान है। सरिता, सागर, पर्वत, क्षेत्रपाल, ऋषि-मुनि और सभी नक्षत्र ग्रह, पुण्य, तीर्थक्षेत्र एवं पीठ और पीठासीन देवता सभी की इस शरीर में विद्यमानता है। अभिप्राय यह है कि इस शरीर में ही सब पुण्य स्थान, तपोवन और देवालय आदि स्थित हैं, इसलिए साधक को अपने शरीर में स्थित उन स्थानों को जानकर वहीं पुण्य संचय करना चाहिए। उसे कहीं अन्यत्र भटकने की आवश्यकता नहीं है।

5-सृष्टि और संहार करने वाले चंद्र-सूर्य इस देह में ही भ्रमण करते रहते हैं और आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी, यह पांचों तत्व भी देह में सदा विद्यमान रहते हैं। तीनों लोकों में जितने भी भूत हैं, वे सभी शरीरस्थ सुमेरू के आश्रय में रहते हुए अपने-अपने व्यवहार में प्रवृत्त रहते हैं। इस सबको भले प्रकार से जानने वाला निःसंदेह योगी है।

6-यह शरीर ब्रह्मांड संज्ञक है अर्थात ब्रह्मांड में और इसमें कोई भेद नहीं अथवा जो कुछ इस शरीर में है वहीं ब्रह्मांड में है। जैसे शरीर में सभी देश और सुमेरू आदि पर्वत स्थित हैं, वैसे ही इस शरीर में सुमेर पर्वत विद्यमान है और उसके शृंग के ऊपर अपनी आठ कलाओं के सहित चंद्रमा अवस्थित है।

7-वह चंद्रमा अधोमुख रहकर दिन-रात अमृत की वर्षा करता रहता है। उस अमृत के दो भेद होते हैं-सूक्ष्म और स्थूल। शरीर की तुष्टि के लिए इड़ा नाड़ी के मार्ग से जो पवित्र जल रूपी मंदाकिनी प्रवाहित है वह अवश्य ही शरीर की रक्षा और पोषण करती है। वह अमृत रश्मियों से युक्त इड़ा नाड़ी (नासिका के) वाम भाग में स्थित रहती है।

8-वह शुद्ध दुग्ध के समान आभा वाला चंद्रमा हर्षपूर्वक अपने मंडल में मेरु पर आकर इड़ा के रंध्र मार्ग के द्वारा शरीर को पुष्ट करता है। मेरु (मेरुदंड) के मूल में अर्थात नीचे की ओर अपनी बारह कलाओं से युक्त हुआ सूर्य स्थित रहता है दक्षिण पथ अर्थात पिंगला नाड़ी के मार्गों से प्रजापति ऊर्ध्वगति वाला होता है।

9- चंद्रमा से स्रवते हुए उस अमृत को सूर्य अपनी रश्मियों के सामर्थ्य से अवश्य ही ग्रास कर लेता है और वायुमंडल में मिलकर संपूर्ण शरीर में भ्रमण करता रहता है। यह सूर्य परम निर्वाणमूर्ति दक्षिण पथ की ओर है अर्थात पिंगला नाड़ी के दक्षिण भाग में स्थित है।

10-ये विराट और लघु ब्रह्माण्ड और इनमें स्थित सभी वस्तुएं स्वर से निर्मित हैं और स्वर ही सृष्टि के संहारक साक्षात् महेश्वर (शिव)

हैं।

स्वर के ज्ञान से बढ़कर कोई गोपनीय ज्ञान, स्वर-ज्ञान से बढ़कर कोई धन और स्वर ज्ञान से बड़ा कोई दूसरा ज्ञान न देखा गया और न ही सुना गया है।

.....SHIVOHAM..